श्री विष्णु अग्रसेन अवतारी

(काव्याञ्जली)

ओमप्रकाश गर्ग 'मधुप'

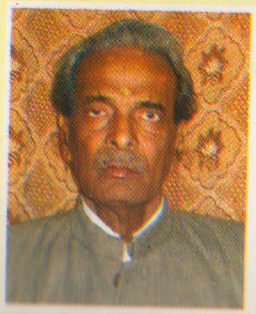

लेखक : ओम प्रकाश गर्ग 'मधुप'

जन्म : श्रावण शुक्ला सप्तमी सम्वत् 1996
अध्ययन : हायर सेकेण्डरी
लेखन : हिन्दी व राजस्थानी दोनों भाषाओं में गद्य – पद्य समान रूप से

रचनाएं : शूर्पणखा, पिरथी पूत, बोल चिड़कली, सांसां रा सूतर, ओळू री ओळ्यां, उणियारो, गज़लॉ रौ गोरबन्द, कुबद कुण्डली, चूड़गट्या, श्री गुरु शरणम्, अनभै उकल्या आखर, गऊ जस कीरत (काव्य), श्री विष्णु अग्रसेन, जग की रीत, दहेज (नाटक) एक ईंट एक रुपया (कहानी संग्रह) अग्रवंशकर्तार का युग(इतिहास शोध), अंशावतार आदि अग्र (काव्य), श्री विष्णु अग्रसेन अवतारी (काव्य) स्तरीय पत्र पत्रिकाओं, आकाशवाणी आदि से रचनाओं का निरन्तर प्रकाशन एवं प्रसारण

सम्मान : रंग भारती राष्ट्र स्तरीय काव्य प्रतियोगिता में सम्मानित, कजरारी (हिन्दी त्रेमासिक) 314/25 त्रिनगर, दिल्ली द्वारा कहानी लेखन हेतु सम्मानित

संस्थाएं : राजस्थान साहित्य अकादमी, राजस्थानी भाषा साहित्य संस्कृति अकादमी की कई समितियों में भागीदारी, विश्व हिन्दू परिषद् (जिलाध्यक्ष), भारत विकास परिषद् (अध्यक्ष), श्री गोपाल गौशाला (आजीवन ट्रस्टी), पश्चिमी राजस्थान अग्रवाल सम्मेलन(कार्यकारिणी सदस्य), जिला अग्रवाल सम्मेलन(जिला मंत्री), गोसेवा आयोग, अग्रवाल समाज बाड़मेर, अन्तर प्रा न्तीय कुमार साहित्य परिषद् (परामर्शदाता) इत्यादि अनेक सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, संस्थाओं से सक्रिय जुड़ाव।

श्री विष्णु अग्रसेन अवतारी

काव्याञ्जली

खण्ड काव्य

ओम प्रकाश गर्ग 'मधुप'

सर्वाधिकार :
ओम प्रकाश गर्ग 'मधुप'
अग्रवाल भवन मार्ग, बाड़मेर (राज.)
मो. : 9461491868

प्रथम वार 1000
सम्वत् 2067

प्रकाशक
बाबाजी स्क्रीन प्रिन्टर्स
हाई स्कूल रोड़,बाडमेर - 344001
मो. 9414438797

आवरण पृष्ठ :
गणेश कुमार गर्ग
मोहित कुमार गर्ग

साज सज्जा एवं व्यवस्थीकरण
गणेशकुमार गर्ग

मूल्य - पच्चास रुपये मात्र

अनुक्रमणिका

	क्या	कहां
1.	प्रवृति	9
2.	महासमर	14
3.	षड़यन्त्र	18
4.	आशीर्वाद	21
5.	अभियान	25
6.	प्रयाण	29
7.	संघर्ष	35
8.	वरण	40
9.	संकट	43
10.	परिवार	46
11.	यज्ञ	50
12.	विद्वेष	54
13.	सौहार्द्य यात्रा	57
14.	निवृति	60

योद्धा श्री अग्रसेन जी

आत्म निवेदन

हमारा भारतवर्ष सनातन राष्ट्र है। यहां की संस्कृति भी सनातन है। हमारा धर्म भी सत्य सनातन है। हमारा संविधान भी यही कहता है।मूलतः अंग्रेजी में लिखा गया हमारा संविधान हमारे भारत देश को सेक्यूलर स्टेट Secular State के नाम से सम्बोधित करता है। अंग्रेजी के इस सेक्यूलर शब्द का अर्थ होता है - प्राकृतिक, प्रारम्भिक, आदि स्वरूपा, कृत्रिमता रहित, अनादि काल से, मानवीय हस्तक्षेप से मुक्त! इन सब का एक ही मूलार्थ होता है वह है - सनातन। हां, सिर्फ सनातन! मेरे विचार से कदाचित इसी सत्य तथ्य को ध्यान में रखते हुए ही संविधान निर्माताओं ने हमारे इस सनातन भारत राष्ट्र के लिये 'सेक्यूलर' शब्द का प्रयोग किया है। इस सनातन संस्कृति वाले सनातन राष्ट्र का इतिहास भी सनातन है। उस समय जब पृथ्वी पर अन्यत्र कहीं सभ्य समाज की संरचना की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, तब ही हमारे देश के महामनीषियों ने वेदों जैसे अनुपम शास्वत ज्ञान ग्रन्थों की संरचना कर ली थी। ऐसे इस सनातन राष्ट्र भारतवर्ष का इतिहास भी तभी से प्रारम्भ हो जाता है जब से सृष्टि का सृजन हुआ। ऐसे असीमित कालखण्ड के असीमित इतिहास को क्रमबद्ध रूप से एकाकार लिपिबद्ध किया जाना सम्भव नहीं है। इसी कारण हमारा इतिहास सांकेतिक एवं प्रतीकात्मक रूप से अति महत्वपूर्ण अंशों को संकलित करते हुए ही लिपिबद्ध किया जा सका है, जो हमारे पौराणिक ग्रन्थों में समेकित है।

भारतीय इतिहास के अति प्राचीन पन्नों को टटोलते पलटते ऐसी कई महान विभूतियों के साक्षात्कार सहज ही हो जाते हैं, जिन्होंने अपने क्रिया कलापों से इस सृष्टि को अनुपम उपलब्धियां प्रदान की हैं। इन्हीं में से एक महान विभूति थे सूर्यवंशीय अग्रकुल भूषण वैश्य महाराजा श्री अग्रसेन। यह महामानव महाराजा अग्रसेन द्वापर के अवसान काल में हुए थे। इन्होंने महाभारत के महासमर में पाण्डवों की ओर से अपने पिता श्री वल्लभ के साथ भाग लिया था। अपने अद्‌भुत रणकौशल तथा अपूर्व शौर्य के कारण श्रीकृष्ण, भीष्म, युधिष्ठिर, अश्वत्थामा, वृहद्बल इत्यादि सहित पक्ष विपक्ष के अनेक महारथियों से वे प्रशंसित भी हुए थे। अत्यन्त पौरुष व पराक्रम से सम्पन्न होते हुए भी उन्होने युद्ध में शत्रु के प्रति अनीति एवं अधर्म प्रेरित हिंसा का प्रदर्शन नहीं किया, बल्कि दया भाव का ही प्रदर्शन अधिकाधिक किया।

युद्ध के पश्चात भी इसी महामनुज ने महायुद्ध की विभीषिका से त्रस्त तत्कालीन जन समुदाय को शान्ति और अहिंसा का सन्देश देकर महाविषाद

से उबारा था। इसी युग पुरुष ने उस संक्रमण काल में भी अत्यन्त धैर्य, लग्न और निष्ठा का परिचय देते हुए दिशाहीन और विश्रंखलित समाज को पुनः समेकित कर एक विशाल समृद्ध एवं शान्त साम्राज्य 'आग्रेय गण' की स्थापना की, जिसका मैत्री विस्तार उत्तर में हिमालय को छूकर दक्षिण में गोदावरी के पार प्रतापनगर तक तथा पूर्व में त्रिपुरा मणिपुर से पश्चिम में सिन्धु प्रदेश तक था। पूर्वाचल में अग्रतल नाम क्षेत्र इन्ही अग्रसेन के नाम से इनके श्वसुर नागराज महिधर ने घोषित किया था, जो आज भी अग्रतला नाम से विद्यमान है।

महाराज अग्रसेन क्षत्रिय थे या वैश्य, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। विभिन्न ग्रन्थों, अनुश्रुतियों, भाटों के गीतों, आख्यानों, आदि के आधार पर उनका सूर्यवंशी, अग्रकुलीन वैश्य होना ही प्रमाणित होता है। तथापि इस विवाद में उलझे बिना हमें इस निर्विवाद तथ्य को तो स्वीकार करना ही है कि अपने समय की एक महानतम विभूति थे महाराज अग्रसेन। उस युगपुरुष महामानव के सम्बन्ध में विभिन्न प्राचीन ग्रन्थों से सूचनाओं का संकलन कर यह काव्याञ्जली स्वरूप पुस्तिका प्रस्तुत करने का दुस्साहस मैंने किया है। रामायण, महाभारत, अनेक पुराणों, अग्रोपाख्यानम् (श्री अग्र भागवत), महालक्ष्मी व्रत कथा, अग्र वैश्य वंशानुकीर्तनम्, उरुचरितम्, इत्यादि अनेक संस्कृत ग्रन्थों, भाटों के गीतों, अग्रोहा में उत्खनन से उपलब्ध पुरा सामग्री, अनेक इतिहासकारों द्वारा रचित इतिवृतों इत्यादि का अध्ययन, मनन, चिन्तन करने के उपरान्त भावप्रसूनों की यह लघु काव्य पुस्तिका सृजित कर पाया हूं, जो सुधि पाठकवृन्दों के समक्ष सहर्ष समर्पित है। आप सुविज्ञ जन की जानकारियों में इससे तनिक भी वृद्धि हो पाई, आपकी मान्य-अमान्य, सहमति-असहमति युत प्रतिक्रियात्मक टिप्पणियां प्राप्त हो पाई, सुधि पाठकों के हृदय को यह पुस्तिका किंचित भी उद्वेलित कर पाई, तो मेरा यह प्रयास सफल व सिद्ध हुआ, यह मान कर मेरे हृदय को अपार सन्तोष प्राप्त होगा।

धन्यवाद।

ओम प्रकाश गर्ग 'मधुप'
श्री राम नवमी, सम्वत् 2067,
अग्रवाल भवन मार्ग,
बाड़मेर - 344001 राजस्थान
फोन - 02982 - 230184, मो. -9461491868

समर्पण

मेरे अग्रज, इस मालाणी क्षेत्र के प्रथम पुरुष जो, उच्चतर अध्ययन के लिये क्षेत्र से ही नहीं राजस्थान से भी बाहर गये तथा कड़ी तपस्या कर के बनारस विश्व विद्यालय से स्वर्ण पदक सहित स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की। जिन्होंने अपने समाज तथा राष्ट्र के महानायक श्री अग्रसेनजी महाराज के इतिहास के प्रति सन्दर्भ तथा जानकारियां जुटाने हेतु अथक परिश्रम किया। किन्तु अपनी अभिलाषा पूर्ण किये बिना ही असमय ही अल्पायु में इस असार संसार का परित्याग कर वे परम्लोक वासी हो गये। उनकी उस अधूरी रही अभिलाषा को पूरी करने का किंचित प्रयास मैंने किया है। कदाचित इस प्रयास से उनकी आत्मा को तनिक शान्ति मिल सके, इसी कामना से अपना यह प्रयास पुस्तिका के रूप में उन्ही परम् पूज्य भाई साहब स्वर्गीय श्री हंसराज जी गर्ग को सादर, सश्रृद्धा शत शत नमन करते हुए समर्पित कर रहा हूं। परम् पिता परमात्मा उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

– ओम प्रकाश गर्ग 'मधुप'

श्री अग्रसेन जी की आरती

ओ अग्रोहा वाले राजा, शरण तेरी मैं आया।
बिगड़ी मेरी आप बना दो, नैया मेरी पार लगा दो,
ले विश्वास मैं आया आया.....ओ अग्रोहा वाले राजा।

अपनी बाबा इतनी गुजारिश, मां लक्ष्मी से कर दो सिफारिश।
किरपा उनकी हर पल बरसे, अग्रजनों का घर घर सरसे।
जीवन में नित हो शुभ छाया.....ओ अग्रोहा वाले राजा।

सत्य अहिंसा धर्म प्रचारक,अग्रवंश के तुम उद्धारक।
साम्यवाद के सफल प्रणेता, ईट निष्क के हो तुम दाता।
जब आया तब पाया पाया.....ओ अग्रोहा वाले राजा।

यज्ञ अठारह करने वाले,जनता के दुःख हरने वाले।
राजाओं के राजा हो तुम, चक्रवर्ती महाराजा हो तुम।
यश तेरा जग छाया छाया.....ओ अग्रोहा वाले राजा।

नागवंश से नाता जोड़ा,गर्व इन्द्र का तुमने तोड़ा।
बाधाओं की बाधा हो तुम, अन्त आपदाओं का हो तुम।
पथ तेरा जग भाया भाया.....ओ अग्रोहा वाले राजा।

अग्रवंश जन मन के राजा,एक छत्र तुम हो महाराजा।
याद करे जग शासन तेरा, पूज रहे हम आसन तेरा।
श्रृद्धा से यश गाया गाया.....ओ अग्रोहा वाले राजा।
ओ अग्रोहा वाले राजा, शरण तेरी मैं आया आया।।

एक

प्रवृति

श्री गुरु पद पंकज निवूं, मातु शारदा ध्याय।
कुल देवी मां श्री रमा, सिंवरूं शीष नवाय।।
गणपति को सुमिरूं प्रथम, हाथ जोड़ शिर नाय।
पूरण होवे काज मम, करजो सदा सहाय।।

कार्तिक शुक्ला दशमी का दिन, सम्मत छाछठ दोय हजार।
गंगातट घनश्याम भवन में, लिखूं बैठ पावन दिन बुधवार।।
श्री अग्रसेन की गाथा है यह, गाथा अति हितकारी है।
जन मन मंगल सुखदायी है, गाथा सब सुखकारी है।।
सूर्यवंश के वैश्य वंश में, अग्र हुए थे युग चेता में।
अग्रवंशकर्तार कहाए, वंश चलाया नव त्रेता में।।[1]
उनके ही कुल अग्रवंश में, अग्रसेन ने जन्म लिया।
सत्य अहिंसा नीति न्याय हित, ही तो वह आजन्म जिया।।
उनका चरित बखानूं अनुपम, मेरे उर में आई है।
जीवन वृत अति पावन उनका, जन जन को सुखदाई है।।
अग्रवंश का नायक था वह, सत्य न्याय का पोषक था।
दीन हीन का संरक्षक था, दुखी जनों का तोषक था।।
धीर वीर गम्भीर बुद्धि बल, दृढ़ इच्छा व्रत धारी था।
एक पत्नीव्रत सत्य सनातन, धर्म अहिंसा चारी था।।
महाराजा था पर जनता का , सेवक बन कर रहता था।
नगर नगर ग्रामों में जाता, स्वयं भ्रमण वह करता था।।
गर्व नहीं था राजा पद का, सर्व समाज के मध्य रहा।
जन जाति समाज सबके ही, बसा हृदय के मध्य रहा।।
अग्र संस्कृति सत्य सनातन, धर्म विचारक बन कर वह।
घूम घूम कर जन जन के ढिग, गया प्रचारक बन कर वह।।
द्वापर कलि का सन्धि काल था, कौरव पाण्डव का जंजाल।
भरत खण्ड की राजनीति पर, हावी था शकुनि का जाल।।
दुर्योधन की महत्वाकांक्षा, पर चलता शकुनि का वश।
मोह ग्रस्त धृतराष्ट्र हुआ था, उसके आगे आप अवश।।

धर्म नीति के पोषक पाण्डव, दुष्ट नीति के हाथों हार।
राज पाट श्री सम्पति खोकर, स्वयं भटकने को लाचार।।
ऐसे घोर संक्रमण काल में, अग्रसेन ने जन्म लिया था।
श्रीवल्लभ औ मातु भगवती, दोनो का कुल धन्य किया था।।[2]
यह शाश्वत है सत्य कि जब जब,पाप बहुत बढ़ जाते हैं।
सृष्टि के दुःख पीड़ा हरने को, तब तब प्रभु आ जाते हैं।।

जब जब जग में पाप का, बढ़ता है व्यापार।
साधु सन्त कल्याण हित, प्रभु लेते अवतार।।
करने दुष्टों का क्षरण, अन्यायी का अन्त।
गौ ब्राह्मण उद्धार हित, आते हैं भगवन्त।।

जन जन की पीड़ा हरने को, प्रभु का मन आतुर रहता।
धेनु धर्म धीरों की खातिर, हर युग में वह तन धरता।।
ऐसा ही संक्रामक युग था, अग्रसेन जब जन्मे थे।
चारों ओर जगत में घर घर, कर्म अनैतिक पनपे थे।।
धर्म नीति और न्याय सभी का, दर्शन तक दुश्वारी था।
भाई भाई ही लड़ते आपस में, स्वार्थ स्नेह पर भारी था।।
द्वापर की अन्तिम वेला में, पाण्डव जब वनगामी थे।
भारत की सत्ता पर कौरव, दुराचार अनुगामी थे।।
तब दक्षिण में विंध्याचल के, पार नगर इक प्यारा था।
सत्य धर्म अरु न्याय नीति युत, वैश्य राज्य वह न्यारा था।।

राजा बनने का फक्त, क्षत्रिय को अधिकार।
उस युग में यह आम था, पनपा हुआ विचार।।
वैश्य वस्तु उपभोग की[3], रही धारण व्याप्त।
सोच कल्पनातीत था, वैश्य राज का आप्त।।

ऐसे युग में भी सच था यह, एक वैश्य राज्य स्थापित था।
सब सुख वैभव सार्वभौम युत, सकल शक्ति से व्यापित था।।

राज वहां करते थे वल्लभ, अग्रवंश के बल शाली।
ऐरण उनका गोत्र[4] राज्य था, उनका अति वैभवशाली।।
दस औ नौ उन्नीस गांव तक, विस्तारित था राज्य सुघर।
जिसकी सुभग राजधानी थी, मनभावन अति प्रतापनगर।।
सूर्य प्रभा सा नगर अलंकृत, सब बिधि शुभ प्राकारों से।
तीन ओर से आवृत था वह, सलिलाओं की धारों से।।
विधर्भ सुता भगवती प्रिया थी, थी वल्लभ नृप की रानी।
वह थी पतिव्रत धर्म पारायण, प्रियदर्शी मुख मृदु बानी।।
उसकी गोद भरी तो जग पर, बहुत बड़ा उपकार हुआ।
इस धरती पर महा मनुज, श्री अग्रसेन अवतार हुआ।।
आश्विन मास शुक्ल प्रथमा को, जन्म लिया उत्तम कुल में।
सूर्यवार मध्यान्ह काल था, श्रेष्ठ समय महेन्द्र पुळ में।।
शुभ वेला शुभ समय सकल ग्रह, नक्षत्रों का ध्यान किया।
विप्र जनो ने गणना कर सब, अग्रसेन तब नाम दिया।।
नाम करण कर विप्र जनों ने, मुदितमना यह बात कही।
यह बालक पारंगत सब विधि, होगा यह उद्घोष सही।।
शस्त्र शास्त्र बल बुद्धि सभी में, यह सब से आगे होगा।
तत्वज्ञान दर्शी तेजस्वी होगा, सत्यशील साधक होगा।।
बाल चन्द्र ज्यों बढ़ता दिन दिन, अग्रसेन यों बढ़ते थे।
नित नित चतुर प्रखर बुद्धि से, वे नव सीढ़ी चढ़ते थे।।
शैशव गया बालपन आया, तब गुरु के आश्रम पठा दिया।
ताण्ड्य ऋषि ने आश्रम में रख, सब विषयों को पढ़ा दिया।।
प्रखर बुद्धि थे, श्रुतिधर थे वे, चित्त साध सब जान लिया।
छह अंगो[5] युत वेद शास्त्र का, हासिल कर सब ज्ञान लिया।।
निरुक्त व्याकरण कल्प छन्द अरु, ज्योतिष शिक्षा की बाधा।
दीक्षा संग्रह सिद्धि प्रयोग संग, धनुर्धरण गुण सब को साधा।।
परधि तोमर प्रास शक्ति असि, समरजीत कौशल सीखा।
खड़ग युद्ध के तीस और दो, बत्तीस पैंतरों[6] को सीखा।।
ताण्ड्य ऋषि ने योग्य जान कर, सकल शास्त्र का ज्ञान दिया।
अति सूक्ष्म अति गोपित सारे, अस्त्र - शस्त्र का अनुदान किया।।

अल्प समय में सीख गये सब, अग्रसेन विद्या सारी।
पारंगत सब भांति हो गए, सबको था अचरज भारी।।

आश्रम में एकाग्र चित्त, होकर देकर ध्यान।
गुरु सेवा रत हो सदा, प्राप्त कर रहे ज्ञान।।
शस्त्र शास्त्र कौशल कुशल, नीति निपुण रह शान्त।
अग्रसेन जी हो गये, सकल कला निष्णान्त।।

एक दिवस आश्रम के वन में, अद्‌भुत घटना एक घटी।
जिसके कारण अग्रसेन की, शौर्य - करुण क्षमता प्रकटी।।
ऋषि आश्रम के निकट विपिन में, आखेटक बन कर आया।
राजा नाम रतीन्द्र मलिन मति, ऋषि कन्या पर ललचाया।।
दुष्ट हृदय कामी व्यभिचारी, ऋषि बाला पर मोहित हो।
झपटा ले दुष्कर्म मनोरथ, काम पिपासा पीड़ित हो।।
भीत शुभा बाला अकुलाई, चीखी भारी क्रन्दन कर।
अग्रसेन तब आये दौड़े, भय पीड़ित चीखें सुन कर।।
केश पकड़ उस कामी नृप के, बांध तुरत रथ में डाला।
दण्ड दिया कीचड़ तन मल कर, मुख को काला कर डाला।।
अपमानित लांछित कर उसको, बहु विधि वाक् प्रहार किया।
मिल कर सब सहपाठी गण ने, ला गुरु के आगे डाल दिया।।
गुरुवर के कहने भर से ही फिर, क्षमादान भी दिया उसे।
किन्तु भविष्य में यह न करेगा, ऐसा वचन लिया उससे।।
ऋषिवर ने भी सहमत होकर, अग्रसेन को मान दिया।
वार वार धिक्कार दुष्ट को, पुनः क्षमा का दान दिया।।
अग्रसेन के शौर्य धैर्य बल, करुणा का परिचय पाया।
ऋषि ने बहु सम्मान दिया, भर अङ्क शीष को सहलाया।।
इस भांति सतत पढ़ते बढ़ते, आश्रम में समय बहुत गुजरा।
हो निपुण सकल विद्याओं में, द्युतिमान चरित उनका निखरा।।
ऋषि ने सब विधि निपुण जान, उनको दीक्षा का दान किया।
गुरु से पा आशीष सर्व विधि, निज गृह को प्रस्थान किया।।
सब विधि हो सुसंकृत बालक, अग्रसेन जी जब घर आये।

मातु पिता सेवक जन जनता, सबके ही मन थे हरखाये।।
साथ पिता के रह कर उनका, वे तो हाथ बंटाने लगे सदा।
राज काज नीति निर्णय में, जब जब आवश्यक हो यदा यदा।।

सेवा में पितु मातु की, रहते सदा संलग्न।
सहयोगी बन कार्य में, उनके रहते मग्न।।
राजनीति रणनीति में, परामर्श उपयुक्त।
राजा मंत्री सैन्य को, देते हो भय मुक्त।।
ज्ञान बुद्धि कौशल सहित, अद्‌भुत निर्णयशक्ति।
देख देख उनकी हुआ, नतमस्तक हर व्यक्ति।।

---

1 महालक्ष्मी व्रत कथा ''अद्यारंभ्य कुले ....तव नाम्ना प्रसिध्यति।
अग्रवंशीया हि प्रजाः प्रसिद्धाः भुवन त्रय।। 127 ।।

2 अग्रभागवत/अग्रोपाख्यानम्
''वल्लभेण भगवत्यां पुत्रोऽभवनेको वंशकरम्।
यस्यासीत मनुष्याग्रस्य कान्तिश्चन्द्रमसोः।। 32 ।।

3 तैत्तिरीय संहिता ''वैश्यो मनुष्याणां गावः पशुनां तस्मात्त आद्या
अन्नधानादध्यसृज्यन्तस्माद् भूयांसोऽन्येभ्यः।। 7/1/1/5

4. लोक अनुश्रुति

5. वेद शास्त्र के छः अंग - निरुक्त, ज्योतिष, व्याकरण, कल्प, शिक्षा, छन्द।

6. भारतीय युद्ध कला में असि युद्ध के भ्रान्त,उद्‌भ्रान्त, आविद्ध, आलुप्त, विलुप्त, प्लुप्त, सृत, संचान्त, समुदीर्ण, निग्रह, प्रग्रह, पदावकर्षण, संधान इत्यादि बत्तीस प्रकार के पैंतरों का वर्णन आता है।

दो

महा समर

अग्रसेन गुणवान थे, विनयशील गम्भीर।
गुरुकुल में रह हो गये, अति विनम्र औ धीर।।
गुरुकुल के निज ज्ञान को, करते अनुभव सिद्ध।
राज काज में नित्य ही, पितु के रह आबिद्ध।।

रहते थे अनुकूल पिता के, नित्य निरन्तर पग पग पर।
धृति बुद्धि सौहार्द्य सहिष्णुता, दया सरलता धारण कर।।
बहुत शीघ्र जन जन के मन पर, उनके गुण की छाप रमी।
कीर्ति और यश फैला उनका, दशों दिशा में धाक जमी।।
त्रेता युग में राम दरश को, जैसे जन जन व्याकुल था।
अग्रसेन के दर्शन को अब, हर मन ऐसे आकुल था।।
इसी भांति करते पितु सेवा, राज काज करते सहयोग।
समय बीतता गया एक दिन, कुछ ऐसा बैठा संयोग।।
राज सभा में दूत एक दिन, पाण्डव कुल का आया था।
युद्ध महाभारत का निश्चित, वह सन्देशा लाया था।।
पाण्डव कुल से अग्रवंश की, तो पहिचान पुरानी थी।
सदा सखावत थी आपस में, यह गाथा जग जानी थी।।
मित्र पाण्डु के रहे पितामह, अतः निमन्त्रण आया था।
धर्म क्षेत्र में धर्म युद्ध का, वह आमन्त्रण लाया था।।
धर्मवीर थे पिता सहज ही, आमन्त्रण स्वीकार किया।
राज्य सभा में बैठ सचिव संग, उस पर गहन विचार किया।।
न्याय नीति औ धर्म हेतु ही, मनुज जन्म बस मिलता है।
इनकी रक्षा हेतु तजे तन, उसको ही यश मिलता है।।
जीवन सफल उसी का है, जो इनके हित जीवन दे दे।
प्राणों को न्यौछावर कर के, अभय धर्म ध्वज को दे दे।।
यही सभा में निर्णय सबका, साथ धर्म का ही देना है।
धर्म नीति पर चलते पाण्डव, पक्ष उन्हीं का ही लेना है।।

कौख मति से दुष्ट हैं, अन्यायी और क्रूर।
दुर्योधन अति दुष्ट है, मद लोभी भरपूर।।
अन्धा है धृतराष्ट्र तो, शकुनि चलता चाल।
भीष्म द्रोण कृप लग रहे, जैसे हुए निढाल।।
कुटिल क्रूर इस राज से, करें राष्ट्र को मुक्त।
पाण्डव दल का साथ दें, यही नीति उपयुक्त।।

सोच समझ कर सबने सब विधि, सेना का आह्वान किया।
शुभ वेला शुभ समय दिवस शुभ, कुरुक्षेत्र अभियान किया।।
हठ कर कर के अग्रसेन भी, युद्ध भूमि में साथ चले।
वह योद्धा क्या धर्म क्षेत्र में, जो न पिता के रंग ढले।।
साथ सदा वे रहे युद्ध में, स्वयं पिता की ढाल बने।
रिपु दल की खातिर थे उनके, नित्य तीर तलवार तने।।
उनका रण कौशल अद्भुत था, त्वरित वार थे द्रुतगामी।
असि शर भल्ल गदा चलते ज्यों, तड़ित प्रभा के अनुगामी।।
महारथी योद्धा भी कोई , नहीं टिका उनके आगे।
रिपु दल उनके शर वारों से, डर कर इधर उधर भागे।।
द्रोण जयद्रथ कृपाचार्य संग, अश्वस्थामा चकित हुए।
रघुवंशी कुल दीपक वृहद्बल, अन्य अनेकों चित्त हुए।।
स्वयं सराहा धर्मराज ने तो, भीष्म प्रशंसा करते थे।
यह बालक अनमोल धरोहर, कृष्ण सदा ही कहते थे।।
महासमर का दसवां दिन था, भीष्म सभी पर भारी थे।
पाण्डव दल के निमित् हो रहे, गंगासुत संहारी थे।।
तभी समर में बढ़ कर आगे, भीष्म पितामह को टेरा।
श्री वल्लभ ने आ ललकारा, कटक सहित उनको घेरा।।
युद्ध किया घनघोर भीष्म पर, बढ़ बढ़ प्रबल प्रहार किये।
किंकर्तव्य विमूढ़ भीष्म थे, क्रोधित उर में खार लिये।।
इच्छा मृत्यु कवच लिये थे, भीष्म किन्तु कैसे मरते?
निश्चित था जो उनसे लड़ते, वही आप रण में मरते।।
यही हुआ श्री वल्लभ के संग, प्राण उन्होंने वहां तजे।
अन्तिम श्वासा रण में ही ली, भीष्म शरों से सजे धजे।।

अग्रसेन लख मृत्यु पिता की, आहत हो लपके आगे।
भरे अमर्ष से ताक ताक कर, लक्ष्य वेध कर शर दागे।।
बींध दिये तन रणवीरों के, क्षत विक्षत रथ रथी किये।
व्यूह भेद कर कौरव दल के, वक्ष अनेकों छेद दिये।।
अविरल कर शर वर्षा भीषण, रक्षा पंक्ति को तोड़ा।
भीष्म पितामह लक्ष्य साध कर, तब अपने शर को छोड़ा।।
किन्तु किया संकेत कृष्ण ने, इसे न बढ़ने दो आगे।
भीम नकुल सहदेव रोकने, सब उसके पीछे भागे।।
तभी युद्ध थम गया सांझ में, भुवन भास्कर अस्त हुए।
लौट चले शिविरों में सैनिक, योद्धा गण सब पस्त हुए।।

महासमर रणक्षेत्र में, हुए वीरगति प्राप्त।
श्रीवल्लभ श्री भीष्म से, दिखा शौर्य पर्याप्त।।
अग्रसेन तब भीष्म पर, धाये कर के घोष।
किन्तु नकुल सहदेव ने, थामा उनका रोष।।

अग्रसेन पर दुःखी हो गये, अपनी घोर विवशता से।
रक्षा कर न सके पितुवर की, पीड़ित इसी अवशता से।।
लगे कोसने निज को ही वे, बैठ पिता के शव के ढिग।
मैं न सका कर्तव्य निभा है, वारम्वार मुझे धिक धिक।।
कृष्णचन्द्र ने अग्रसेन को आकर, तब ढाढ़स बंधवाया।
एक वीर की भांति पिता का, कर्मकाण्ड सब करवाया।।
शेष दिनों में अग्रसेन ने, युद्ध किया डट कर भारी।
हा हा कार मचा रिपु दल में, प्राण तजे थी लाचारी।।
दिवस अष्टदश युद्ध चला औ, कौरव दल संहार हुआ।
विजय धर्म की हुई पाप से, धरती का उद्धार हुआ।।
यह आख्यान जैमिनि ऋषि ने, गाया और सुनाया है।
'जय' नामक निज ग्रन्थ सुपावन, में इसको दर्शाया है।।[1]
अग्रसेन निज नगरी लौटे, खिन्न हृदय मन त्रास लिये।
महासमर में खोया जिनको, उन सब का संत्रास लिये।।
वीरगति को गये पिता, उनके सब विधिवत कर्म किये।

संस्कार शास्त्रोक्त सकल ऋषि, संत कहे सब धर्म किये।।
सचिवामात्य सहित जन प्रतिनिधि, सबकी सभा बुलाई।
मिल कर सोचे अग्रसेन ही राजा, बने सब के मन भाई।।
जन मण्डल ने निर्णय लेकर, उन्हें किया घोषित राजा।
जन जन का मन हर्षित उत्सव, नगर मने बजते बाजा।।

अग्रसेन वल्लभ सुवन, बन जायेंगे भूप।
जन जन के मन हर्ष था, निर्णय यह अनुरूप।।
राजमहल में हर्ष था, नगरी में उल्लास।
पल्लिन देय बधाइयां, नाचें सेवक दास।।

---

1. श्री अग्र भागवत (अग्रोपाख्यानम्) तृतीय अध्याय
''जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।
महीं विजयते क्षिप्रं तथा शत्रुश्च मर्दति।। 92 ।।

तीन

षड़यन्त्र

हर सूं हर घर मोदमय, होता नर्तन गान।
हर्षित मन तन थिरकते, जिह्वाओं पर तान।।
जन जन के उर में बसे, अब तक थे युवराज।
अब वे ही हो जाएंगे, अग्रसेन महाराज।।

सभी मुदित जनता जनसेवक, सैनिक सचिवामात्य सकल।
राजमहल में खुशी सभी को, किन्तु एक परिवार विकल।।[1]
काका कुन्दसेन के मन में, पनप रही थी कुटिलाई।
पिता पुत्र षड़यन्त्र रचाते, गढ़ते मिल कर मकराई।।
वज्रसेन सुत महाधूर्त था, क्रूर कुटिल मन का लोभी।
सत्ता पर अधिकार ध्येय बस, दुष्ट कृत्य कर ले जो भी।।
मिल कर पिता पुत्र ने ऐसा, जाल गूंथ फन्दा डाला।
सैनिक सभासदों को फांसा, कुछ को वश में कर डाला।।
कूट रचा छल से धन बल से, फन्दा कुछ ऐसा जकड़ा।
शयन कक्ष में निद्रा लेते, अग्रसेन को जा धर पकड़ा।।[2]
गुप्त रूप से कारागृह में, डाल दिया उसको ले जा कर।
बांध हथकड़ी बेड़ी बन्धन, दूर विजन में ही पहुंचा कर।।
किया प्रताड़ित नाना विधि से, उसको पीड़ा पहुंचा कर।
कहते अन्तिम श्वास तलक है, घर तेरा यह कारा घर।।
किन्तु जगत कर्ता ने तो कुछ, और विधान रचाया था।
महा कार्य के लिये जगत में, अग्रसेन तो आया था।।
ऐसे बन्दी बन कर तो उसको, नहीं वहां पर रहना था।
उसको तो जन जन की दारुण,दुःख पीड़ा को हरना था।।
बन्धे हाथ पग पीड़ा सहते, रात बिताई कारा में।
भोर भई तो सूर्य रश्मियां, आ छितराई कारा में।।
कठिनाई से सरक घिसट कर, सूर्य किरण में वे आये।
हाथ जोड़ कर मन ही मन में, दिवानाथ को शिर नाये।।

सूर्यवंश के आदि प्रणेता, सूर्यदेव का ध्यान किया।
मां लक्ष्मी कुलदेवी का भी, आतुर हो आह्वान किया।।
हे भुवनेश्वर भुवन भास्कर, अब तो आप सहाय करो।
ज्योतिपुञ्ज तिमिरारि रविवर, मेरा तम सन्ताप हरो।।
हे कुल नायक हे शुभ दायक, हे दिनपति दिननाथ प्रभो।
इस संकट से आन उबारो, असितारि सित शुभ्र विभो।।
कहते कातर मन की अरजी, करुणाकर सुन लेते हैं।
पीड़ित की हर लेते पीड़ा, मनवांछित वर देते हैं।।
अग्रसेन की करुणा विनती, क्यों न नाथ बोलो सुनते?
दिव्य पुरुष के लिये भला क्या, प्रभु ऐसी मृत्यु चुनते??
उससे जग का हित होना था, प्रभु का अद्‌भुत चक्र चला।
टूट गया दुष्चक्र दुष्ट का, संकट अपने आप टला।।
स्वामी भक्त प्रखर मन्त्री थे, अनंगपाल श्री वल्लभ के।
समझ गये थे कूट चक्र वे, वज्रसेन उस कुन्दज के।।
कुछ विश्वस्त सैनिकों के संग, गुप्त रूप अभियान किया।
अग्रसेन को काराग्रह से, मुक्त करा प्रस्थान किया।।
किन्तु शोर मच गया, कुन्द की सैना ने डाला घेरा।
अग्रसेन ले खड़ग हाथ में, झपटे दुष्टों को टेरा।।
कुन्दसेन के रथ पर चढ़ कर, प्रथम सारथि को मारा।
एक वार कर उसका दायां हाथ, किया तन से न्यारा।।[3]
मूर्छित हो कर कुन्दसेन गिर, पड़ा आप रथ के भीतर।
भागे डर कर क्रीत सिपाही, क्षण दो क्षण के ही भीतर।।
अनङ्पाल आमात्य युद्ध में, संग कटक सब खेत रहे।
शेष अकेले अग्रसेन रहे, यह दृष्य भयंकर देख रहे।।

अपनों का खुद आप ही, कर के यों संहार।
अग्रसेन के हृदय में, दारुण उठी हिकार।।
इस सत्ता के लोभ में, कितना भरा विकार।
घृणित कर्म से पद भरा, मुझे नहीं स्वीकार।।

लौट नगर को जाना अब तो, उचित नहीं लगता उनको।
इसीलिये तज मोह राज्य का, वन का पथ चुनना उनको।।

कष्ट झेलते पीड़ा सहते, अति दुर्गम वन को पार किया।
विंध्याचल को लांघ मरुस्थल, से उत्तर अभियान किया।।
ऊष्ण तप्त निर्जल निर्जन था, विकट बालुका वन विस्तीर्ण।
जिसमें भ्रमित भटकते फिरते, अग्रसेन तन मन से जीर्ण।।
थक हारे थे पस्त पथ हीना, अंग अंग में दारुण पीर।
दिशाहीन हो हत उत्साही, मलिन हृदय हो हुए अधीर।।
भूख प्यास चिन्ता पथ पीड़ा, हावी घेरा डाल हुए।
किंकर्तव्य विमूढ़ बुद्धि बल, खोकर आप निढाल हुए।।
मन हारा तो तन भी हारा, अंग अंग सब ऐंठ गये।
हो कर शक्तिहीन मार मन, अग्रसेन बस बैठ गये।।

मन के हारे हार है, यह उक्ति विख्यात।
मन में हो उत्साह तो, देवे जग को मात।।
व्याधाओं से व्यग्र हो, होकर हत उत्साह।
अग्रसेन मन हार कर, डूबे व्यथा अथाह।।

---

1. श्री अग्रभागवत पंचम अध्याय
   एवं श्रुत्वां तु कुन्दसेनो यशोकार्तः द्विधाचित्तः।
   मोहादैश्वर्य लोभाच्च पापामतिरजायत।। 12।।
2. श्री अग्रभागवत पंचम अध्याय
   कुल्दसेनः परीतात्माकुलकीर्तिवंशपुणाशनः।
   अतिक्रन्तश्च मर्यादां सुप्त अग्रसेनो ग्रहीतुं।।23।।
3. महाराजा अग्रसेन और अग्रभागवत - सुब्बेसिंह गुप्ता
   भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध में अनंगपाल शहीद हो गए। अग्रसेन ने कुन्दसेन को पकड़ कर उसका हाथ काट डाला। (पृष्ठ 11)

चार

आशीर्वाद

मन से तन से हार कर, साहस हुआ निःशेष।
शक्ति गई उत्साह गया, व्याकुल हुए विशेष।।
सोच समझ संज्ञान सब, मति का कर के त्याग।
हत उत्साही हृदय से, करते आप विराग।।

कितनी देर हुई रवि डूबा, सांझ ढली कब रात हुई।
उन्हें न कुछ भी बोध रहा, सब शून्य चेतना शान्त हुई।।
तभी उधर से गर्ग ऋषि के, निकले शिष्य लिये समिधा।
देख वहां उस राजकुंवर को, उनको तनिक हुई दुविधा।।
ऋषिवर से जाकर आश्रम में, समाचार सब बतलाए।
अग्रसेन को आश्रम में तब, ऋषिवर जा कर ले आए।।
ऋषिवर तो ज्ञानी ध्यानी थे, ध्यान लगा सब जान लिया।
यह बालक तो अवतारी है, है महा मनुज पहिचान लिया।।
इस युग की दिग्भ्रमित मनुजता, को यह राह दिखाएगा।
जन जन को दुःख पीड़ा हारी, नव सन्देश सुनाएगा।।
इस महा समर के कारण से, जो जग में फैली विपदाएं।
मन मन में द्वेष भरा भारी, जन जन में व्याप्त विषमताएं।।
इस महा विषाद के विषघट को, यह बालक फोड़ गिरायेगा।
असमंजस का अवसाद मिटा, आशा की किरण जगाएगा।।
यह वर्तमान का है भविष्य, और कल के युग की थाती है।
जो आलोकित जग कर देगा, उस दीप शिखा की बाती है।।
यह भ्रमित हुआ हो कर हताश, इसको उत्साहित करना है।
कल संवर सके इस सृष्टि का, तो इसको आज उबरना है।।
यह सोच तुरत ही ऋषिवर ने, उस बालक के शिर हाथ धरा।
कर सहलाते शिर हलके हलके, नयनों में छलके नेह भरा।।
कर परिचर्या उपचार दिया फिर, दी औषध थोड़ा चेत हुआ।
ऋषिवर का स्नेह परस करुणा, शिष्यों की सफल हुई दुआ।।

ऋषि का निश्छल स्नेह युत, परम सुपावन स्पर्ष।
अग्रसेन के चेत में, हुआ उचित उत्कर्ष।।
आश्रम में रहते हुए, पाया सब उपचार।
स्वस्थ हो गए शीघ्र ही, स्नेहिल पा व्यवहार।।

कुछ दिन उपचार चला विधिवत, तन पीड़ा से तो मुक्त हुए।
पर मन से उबर नहीं पाए, अपनो के छल से ग्रस्त हुए।।
तब ऋषि ने ही आश्वस्त किया, अरु मन में नव उत्साह भरा।
दे धैर्य धर्म का उद्‌बोधन, निज कर्तव्यों का बोध करा।।
यह वर्तमान का संकट है, धर धैर्य विपत्ति से लड़ना है।
रख साहस धीरज चतुराई, व्यूह विपदा तोड़ उबरना है।।
मां लक्ष्मी जग की माता है, वह कुल देवी है अग्रों की।
हो आतुर उनकी शरण गहो, वह उद्धारक है व्यग्रों की।।
हे पुत्र निराशा को त्यागो, आशा का सम्बल मत छोड़ो।
वह सकल सिद्धि की दाता है, माता से ही नाता जोड़ो।।
तब अग्रसेन आश्वस्त हुए, माता का मन में ध्यान किया।
एकान्त ढूंढ आश्रम में ही, मां श्री व्रत का संधान किया।।
मृण मूर्ति बना श्री विग्रह की, सुन्दर निज कर से थापित की।
आश्विन शुक्ला जय दशमी से, दिनचर्या तप से व्यापित की।।[1]
की घोर तपस्या वर्षो तक, दिन ग्यारह सौ व्यतीत हुए।[2]
तब चौथे वर्ष मास कार्तिक, के दिवस चतुर्दश रीत हुए।।
जब दिवस पन्द्रहवां आया तो, थी रात अमावस की काली।
पर सतत समर्पित अग्रसेन की, चले अनवरत तप पाली।।
उस सघन रात अंधियारी में,तब ज्योतिपुंज अद्‌भुत प्रकटा।
आलोकित हुआ क्षेत्र सारा, ऋषि आश्रम ज्योतित हो दमका।।
रात अमावस की काली वह, द्युतिमान हुई श्री आने से।
वह मरुभूमि भी धन्य हो गई, परस मात्र पा जाने से।।
ऐसी आभा यों फैल गई, ज्यों कोटि सूर्य सविता चमके।
कण कण में स्वर्ण प्रभा छाई, ज्यों कनक रश्मियां दम दमके।।
माता का ऐसा तेज सहज ही, वातावरण उद्दीप्त हुआ।
वह पावन आश्रम का आंगन, श्री आभा युक्त प्रदीप्त हुआ।।

कार्तिक की काली अमा, निपट अन्धेरी रात।
प्रकट भई मां चंचला, रजनी भई प्रभात।।
एकादश शत दिवस तक, रहे तपस्या लीन।
मन को कर एकाग्र तन, मां के किया अधीन।।
तब हो कर सन्तुष्ट मां, देने आई दर्श।
आल्हादित थे अग्रवर, उर का मिटा अमर्ष।।

मां के दर्शन हुए हृदय में, अग्रसेन तब अति हरखाए।
हुई साधना सफल मुदित मन,अंग अंग थे पुलकाए।।
साष्टांग गिर चरण कमल में, पद पंकज को थाम लिया।
नयन नीर अविरल धारा से, पग धोने का काम किया।।
मां ने ममता से शिर पर रख, हाथ स्नेह का दान दिया।
मन वांछित सब तेरा होगा, प्रसन्न वदन वरदान दिया।।
हे वैश्य प्रवर तेरी गाथा, युग युग तक जन जन गाएगा।
तेरे ही कारण अग्रवंश सब, वैश्यों में श्रेष्ठ कहाएगा।।
उठ तूं अपना कर्तव्य निभा, कर कार्य तुझे जो करना है।
इस महा समर से पीड़ित, युग का क्लेश तुझे ही हरना है।।
वह कुरुक्षेत्र का महा विनाश, कितनो ने प्राण गंवाए हैं।
नर हीन हो रही धरती पर, संकट के बादल छाए हैं।।
रक्षक राजा सब खेत रहे, पथ भ्रष्ट हो रही जनता है।
नेतृत्व हीन जब हो समाज, तब भृष्टाचार पनपता है।।
है दिशाहीन नेतृत्व आज, सत्ता शासन दिग्भ्रमित हुआ।
जनता निज पंथ चुने कैसे, जब राजा ही पथहीन हुआ।।
सब किंकर्तव्य विमूढ़ हुए, पथ ताक रहे उस नेता का।
जो मार्ग सही दिखला पावे, ऐसे दृष्टा युग चेता का।।
यह कार्य तुम्हें ही करना है, कांधों पर बोझ उठाना है।
जन जन को चेतन करने का, तुमको कर्तव्य निभाना है।।
हे वत्स तुम्हें नायक बन कर, यह दुष्कर धर्म निभाना है।
इस बढ़ती घोर निराशा में, आशा का सूर्य उगाना है।।
यह मेरा है वरदान तुम्हें, तुम जन हित सदा विचारोगे।
वह पूर्ण सदा हो कार्य तेरा, जो करना मन में धारोगे।।

जाओ गुरु से आयुष ले कर, निज लक्ष्य और पथ चयन करो।
और उन्हीं के ही पथ दर्शन में, फिर ध्येय मार्ग पर गमन करो।।
इतना कह दे वरदान उन्हें, मां लक्ष्मी अन्तर्धान हुई।
तब अग्रसेन आश्वस्त हुए, मन काया ऊर्जावान हुई।।
मां चरणों की रज शीष लगा, फिर नमन किया उस धरती को।
संकल्प किया मैं ही उद्धारूंगा, अवसादों से इस जगती को।।

यह वसुधा माता मेरी, मैं हूं इसका लाल।
जीते जी मेरे न हो, माता कभी निढ़ाल।।
पीड़ा इसकी मैं हरूं, हरूं सभी के क्लेश।
संकट सारे दूर हों, कण्टक रहें न शेष।।

.....

1. श्री अग्र भागवत अष्टम अध्याय
समारेभे कृतजपोऽश्विन याम्ये जयप्रदे।
अग्रसेनो ध्यायति महालक्ष्मिं तपस्यती।। 38
2. श्री अग्र भागवत अष्टम अध्याय
शताधिक सहस्त्रशः दिवसे तदा चक्रतुरोजसा।
ततः प्रीतोऽभच्छर्वस्तयां संयमने च ।। 63

पांच

अभियान

मातु कृपा ऐसी हुई, जागा उर विश्वास।
निकल गई उर में फंसी, हत् आशा की फांस।।
नव साहस उत्साह नव, सकल रोम में व्याप्त।
गुरु चरणों में आ नमे, नव उर्जा से आप्त।।

सुदृढ़ मन दृढ़ इच्छा शक्ति, ले कर अग्रसेन गुरु ढिग आए।
उत्साह तेजमय मुखमण्डल, लख गुरुवर अतुलित हरखाए।।
भर कर बाहों में अग्रसेन को, गुरु ने छाती से लगा लिया।
ले जाकर मरु में दबा हुआ, तब पितृ नगर भी बता दिया।।
यह नगर तुम्हारे पुरखों का, आग्रेय राज्य था कहलाता ।
वैश्यों का अनुपम नगर राज्य, यह सबके मन को था भाता।।
फिर बसा इसे जीवन्त करो, यह तव सम्मान बढ़ा देगा।
लेकर माता का नाम करो, उत्खनन कोष यह भरा देगा।।
यह पुण्य धरा है वैश्यों की, गुरुवर ने भेद बता डाला।
ऋषियों ने मिल कर अग्रसेन का, राज्याभिषेक करा डाला।।
यह धरा रत्नगर्भा है हे सुत है, इसमें पुरखों का कोष दबा।
यह जननी जन्म भूमि है इसमें, पुरखों का इतिहास ढबा।।[1]
फिर एक वार ऐसा कर दो, जग भर में इसकी धूम मचे।
दुनियां में फिर से एक वार, यह वैश्य पुत्र इतिहास रचे।।
तब अग्रसेन ने संकल्पित उस, धरती पर अभियान किया।
द्वादश योजन विस्तार क्षेत्र में, गढ़ आग्रेय निर्माण किया।।
ऊंचे तोरण द्वार भवन पथ, सर वापी कूप सरोवर नाना।
उपवन सुन्दर सुमन वाटिका, अलि कोकिल पिकि पंछी नाना।।
मध्य नगर अति भव्य सुसज्जित, मां लक्ष्मी का मन्दिर सोहे।
अनुपम नगरी परम् मनोहर, ऋषि मुनि देवों का मन मोहे।।
राजसभा में उच्चासन पर, श्री विग्रह सुन्दर स्थापित।
वैश्यराज्य की कुल देवी मां, लक्ष्मी घर घर घट घट व्यापित।।
प्रातः सांय नित पूजा होती, यज्ञ हवन नित होते रहते।

स्वयं अग्रसेन जी भी इनमें, प्रति दिन आते पूजा करते।।
शीघ्र सभी दिशि से आ आकर, नगर राज्य में लोग बस गए।
विविध अष्टदश गोत्र प्रजाजन[2], आए आ सब ओर रस गए।।
अग्रवंश पुरखों का जन पद, फिर होता जीवन्त लग रहा।
पावन परम वैश्य धरती का, मुखरित कण कण हुआ हंस रहा।।
गोत्र अट्ठारह गण अट्ठारह, अष्टादश पति भूप हो गये।
सभा मध्य बैठे गण नायक, गोत्र गोत्र प्रतिरूप हो गये।।
अग्रवंश का नरपति पा कर, आग्रेय आप ही धन्य हो गया।
जनरव कलरव से गुञ्जारित, मुखर निखर अति रम्य हो गया।।
चतुर सुजान वीरवर राजा, अग्रसेन का शासन सुखमय।
जन जन के घर घर में बरसे, मातु कृपा से वैभव मधुमय।।
न्यायावर्ती धर्मवाह थे, अग्रसेन थे सम्यक शासक।
मर्यादित नित नीति धर्म में, अग्र राज्य के वे संचालक।।
समय बीतता गया राज्य वह, जग भर में विख्यात हो गया।
सुख सुविधा सम्पन्न हुआ तो, स्वर्ग धरा पर ख्यात हो गया।।
जनता सुखी सुखी राज्याश्रित, तो उन्नति के द्वार खुल गये।
समय बीतता गया खुशी में, कितने ही मधुमास घुल गये।।

अग्रसेन नृप हो गए, बीते कितने वर्ष।
वैश्यों के इस राज्य ने, फिर पाया उत्कर्ष।।
पितृ भूमि अग्रोक अब, कहलाई आग्रेय।
समता समृद्धि स्नेह का, पाले उत्तम ध्येय।।

युवा हो गए अग्रसेन अब, अंग अंग पौरुष छलकाता।
मधुर मनोहर मोहक छवि, स्मित मुखमण्डल सबको भाता।।
गुरुवर गर्ग ऋषि ने तब यह, परखा उचित समय है आया।
बुला शिष्य को स्नेह सहित ढिग, ब्याह करो ऐसा समझाया।।
नागराज महिधर की पुत्री, रूप रंग गुण तेज स्वरूपा।
बुद्धिमती सुन्दरी लजवन्ती, साक्षात् लक्ष्मी प्रतिरूपा।।
नाम माधवी सुभग सोहिनी, है सब विधि अनुरूप तुम्हारे।
उसका वरण करो सुत जा कर, यह ही है उपयुक्त तुम्हारे।।

जाओ मणिपुर निर्भय हो कर, ऋषि उद्दालक के ढिग जाना।
उनकी ले आशीष अनुज्ञा, सिद्ध कार्य कर ही पुनिः आना।।
नाग बहुत शक्ति शाली हैं, उनसे जब सम्बन्ध बनेगा।
सकल विश्व में अग्रसेन तव, मान और सम्मान बढ़ेगा।।

पूर्व दिशा में है बसा, नाग लोक सम्पन्न।
वैभव शाली सब वहां, कोई नहीं विपन्न।।
शक्ति शौर्य बल बुद्धि में, सब विधि हैं वे श्रेष्ठ।
उनसे हो सम्बन्ध तो, क्षमता बढ़े यथेष्ठ।।

शिवोपासना नित करते हैं, वे नाग बहुत शक्तिशली हैं।
अद्भुत और अलौकिक शक्ति, बहुत उन्होने तो पा ली है।
देव दनुज गन्धर्व किन्नरों, सब पर उनकी धाक जमीं है।
मानव भी भय खाते उनसे, जग में उनकी साख ठमी है।।
नागराज महिधर बलशाली, अतुल शक्तियों के स्वामी हैं।
माया दैविक और आसुरी, विद्या उनकी अनुगामी है।।
किन्तु मानवों के प्रति उनका, पुत्र तनिक भी स्नेह नहीं है।
तुम उनका मन जीत सकोगे, इसमें पर सन्देह नहीं है।।
पुत्र तुम्हारे कुल की लक्ष्मी, उनकी सुता माधवी ही है।
जाओ वरण उसे कर लाओ, यह कुल साध साधनी ही है।।
जाओ हो निश्चिन्त राज्य तव, निष्कण्टक बान्धे रखूंगा।
लौटो पा कर विजय तब तलक, सब सुविधा साधे रखूंगा।।
माता और अनुज भी तेरे, तब तक यहां पहुंच जायेंगे।
पुरवासी इस अग्रनगर के, इतने सारे सुख पायेंगे।।
वे सकुशल हैं गुप्तस्थल पर, उनकी चिन्ता तनिक करो मत।
उनको यहां लिवा लाऊंगा, शंका उर में तनिक धरो मत।।
अब तुम जाओ करो शीघ्रता, अपना कार्य सिद्ध कर आओ।
मां की बहू राज्य की रानी, जाओ शीघ्र वरण कर लाओ।।

गुरुवर ज्ञानी गर्ग ने, अवसर उचित विचार।
अग्रसेन से यों कहा, भर वाणी में प्यार।।

पुत्र समय पर जो सरे, कार्य वही है श्रेष्ठ।
यथा समय सब कार्य हो, साधन करो यथेष्ट।।
इसीलिये हे पुत्र अब, चुनो गृहस्थी पंथ।
नागसुता शुचि माधवी, उसके बन कर कन्थ।।
शीघ्र सिधाओ पुत्र तुम, नागलोक की ओर।
लाओ उसको वरण कर, बांध प्रणय की डोर।।

.....

1. श्री अग्र भागवत अध्याय 9 श्लोक 34 से 42
एवमुक्तस्तु ममाश्रम समीपे हि मरुधन्भूः।
बालुका पूर्ण राजन् दिशामावृत्य पश्चिमाम्।। 34।।
प्रथमे प्राप्ता नृपाश्रियं अभिषिक्ता सचामराः।
पुरस्थानि रम्याणि मृगयन्तो यथाक्रमम्।। 35।।
अथाभ्यषिंचत् तं अग्रं सार्ध वेदविद्भिर्द्विजैः।
अभिषिक्तो विमुक्तभूमे स श्रियायुक्ततो महाबलः।। 36।।
प्राप्त्वा ह्यमितं धरा एवं तत्र सम्पूजितः तदा।
सभाज्यमानो विप्रेश्च जयशब्दोत्तरेण च ।। 37।।
आज्येन तर्पयित्वमहादेवं विधिवत्संस्कृतेन च।
मंत्र सिद्ध चरुं कृत्वा पुरोधाः स ययो तदा।। 38।।
सर्व स्विष्टतमं कृत्वा विधिवत वेद पारगाः।
किंकराणाततः पश्चाच्चकार बलिमुत्तमम्।। 39।।
कृत्वा पूजां तु रुद्रस्य गणानां चैव सर्वशः।
ययो गर्ग पुरुस्कृत्य नृपो रत्ननिधिं प्रति।। 40।।
ततः धरां खानयामास बालुकार्णवमव्ययम्।
प्रत्यपद्यत रत्नानि विविधानि वसूनि च।। 41।।
तस्मिन बालुवनस्थाने आग्रेय नाम सा पुरी।
अग्रसेनं पुरा सृष्टा रम्या पुण्य पुरोत्तमम्।। 42।।
2. श्री अग्र भागवत अध्याय 10
प्रजाभिरष्टदशभिर्ह्रष्टाभिश्च समन्वित।
अग्रसेनो श्रियां भक्तिं व्यवर्धयत तां पुरीं।। 39।।

छः

प्रयाण

कैसा होगा देश वह, नागों का संसार।
बाधा व्याधा क्लेश का, किया न तनिक विचार।।
गुरु की आज्ञा है इसे, पूरी करूं सयास।
अग्रसेन झट चल पड़े, ले उर में विश्वास।।

गुरु के वचन मान कर आज्ञा, शिरोधार्य कर विनय भाव से।
पग में शीष झुका श्रृद्धा से, मस्तक पद रज धरी चाव से।।
ऋषि से पा आदेश चले तब, अग्रसेन हो कर उत्साही।
हो कर अश्वारूढ़ पूर्व दिशि, बढ़े प्रणय के बन कर राही।।
अंग बंग को पार किया तब, द्वार नागलोक तल का पाया।
ज्योतिषपुर से आगे बढ़ कर, सुन्दर अतल लोक भी आया।।
वितल लोक फिर आया मोहक, चम्पा के पुष्पों से सोहित।
खिली खिली चम्पा सी फिरती, अहि कन्याएं करती मोहित।।
इसी भांति नाना अति मोहक, नगर लोक से हो कर आगे।
बड़ी बड़ी अति वेगवती नद, नदियां पर्वत ऊंचे लांघे।।
सुतल तलातल भव्य रसातल, चलते चलते पार कर लिये।
दृढ़ इच्छा शक्ति ने पथ के, कष्ट क्लेश दुःख आप हर लिये।।
तब पहुंचे पाताल लोक के, राजनगर मणिपुर में जा कर।
शीतल सलिला सतत प्रवाहित, लोहित सरिता के तट आ कर।।
शान्त सुभग सुन्दर वन वीथी, सघन विटप तरु वट के नीचे।
वहां तपस्या रत उद्दालक, ऋषिवर बैठे थे दृग द्वय मींचे।।

मौन मग्न थे जाप में, वट के नीचे बैठ।
अग्रसेन भी शान्त हो, गये चरण में बैठ।।
ऋषि के पुण्य प्रभाव से, था सात्विक परिवेश।
दर्शन करने मात्र से, चिन्ता हुई निःशेष।।

गौर वर्ण तन भस्म रमाए, जटा जूट शिर हाथ कमण्डल।
अग्निशिखा सी देता आभा, तेजोमय तापस मुखमण्डल।।
शान्त चित्त एकान्त ढूंढ कर, बैठे थे वे ध्यान लगाये।
अग्रसेन ढिग उनके जाकर, दर्शन कर मन में हरखाये।।
हाथ जोड़ नत मस्तक होकर, नमन किया चरणों को छूकर।
ऋषिवर ने दृग खोल निहारा, स्नेह दिया कर मस्तक छूकर।।
बोले अग्रसेन हे ऋषिवर, मैं सुदूर पश्चिम से आया।
गुरु मेरे श्री गर्ग ऋषी ने, मुझे आपके पास पठाया।।
दिया मुझे आदेश आपसे, आकर आशीर्वाद गहूं मैं।
नागलोक अपरिचित आंचल है, शरण आपकी आन रहूं मैं।।
कृपा आपकी होगी तब ही, कार्य सिद्ध हो पाये मेरा।
वह उपाय बस आप करेंगे, सफल पूर्ण हो मेरा फेरा।।
नागराज महिधर की पुत्री, गुणी माधवी को अपनाऊं।
वरण करे ऋषिवर वह मेरा, कैसे सिद्ध इसे कर पाऊं?
करें मार्गदर्शन अब मेरा, यही विनय कर जोड़ कर रहा।
दें आशीष उपाय बतलावें, शीष आपके चरण धर रहा।।

गुरु मेरे श्री गर्ग ने, दिया मुझे आदेश,
दो वंशों में मेल हो, बने मीत दो देश।।
ऋषिवर आया शरण में, दें मुझको आशीष।
गुरु की आज्ञा सिद्ध हो, पूरी बीसो बीस।।

बोले मृदुवाणी सुत आओ, कब से करूं प्रतीक्षा तेरी।
मुझे मनोरथ ज्ञात तुम्हारा, जानूं मैं अभिलाषा तेरी।।
ऋषिवर श्रेष्ठ गर्ग का आशय, हृदयंगम कर पुलक रहा हूं।
उनका यह अभियान विश्व के, हित में है यह समझ रहा हूं।।
तुम हो योग्य गुणी सब लायक, यही भावना है सुत मेरी।
बहुत समय बीता अब आये, किन्तु तनिक अब करो न देरी।।
हे नरश्रेष्ठ वैश्य कुल भूषण, समय देखता बाट तुम्हारी।
वह सम्पन्न करो निज कारज, यही सदा आशीष हमारी।।

ऋषि ने दी आशीष औ, कहा सिद्ध हो कार्य।
किन्तु देर अब मत करो, करो शीघ्रता आर्य।।
तुरत सिधाओ पुत्र तुम, मन में रख विश्वास।
मेरी है शुभ कामना, फले गर्ग की आस।।

देवराज सुरपति अति कामुक, नागसुता पर हुआ विमोहित।
मांग चुका है नागराज से, कई वार उसको अपने हित।।
नागराज महिधर भी आतुर, नाग सुता का करने परिणय।
स्वर्गाधिपति को कर सौंपू, मन ही मन ऐसा कर निर्णय।।
यह अनुचित है फलित न होवे, सुत इस कारण करो शीघ्रता।
सोच सोच कर यह अनहोनी, बढ़ती सुत मम हृदय व्यग्रता।।
अतः तुरत तुम जाओ नरपति, ध्येय सिद्धि का कार्य साधने।
किन्तु सम्हल कर रहना प्रतिपल, होगा संकट सदा सामने।।
ये हैं नाग शेष के वंशज, विषधर तक्षक के कुलधारी।
इनके पास सहज हैं नाना, मोह जाल भ्रम विद्या भारी।।
सभी जितात्मा हैं पर दम्भी, अंहकार मद मत्सर से रत।
छद्म युद्ध माया रण सब में, ये पन्नग सब हैं पारङ्गत।।
वत्स शक्ति के बल पर केवल, पार नहीं इनसे पाओगे।
बुद्धि विवेक कौशल से ही सुत, वश में इनको कर पाओगे।।
इसीलिये तुम सोच समझ कर, चतुराई से सब कुछ करना।
माया भ्रम कुटिलाई से बच, परख परख पथ को पग धरना।।
अब तुम जाओ राजवाटिका, वहां नाग कन्या भी होगी।
सर्व प्रथम मन उसका जीतो, पहली प्रीत वहीं से होगी।।
उसके मन को जीत लिया तो, निश्चय जीत तुम्हारी होगी।
और विजय यह तुम दोनों की, सकल विश्व हितकारी होगी।।
अब जाओ तुम ध्येय साधने, कुल देवी का ध्यान लगा कर।
दर्शन कर लो हाटकेश्वर, शिव मन्दिर में पहले जा कर।।
हाथ जोड़ पद रज रख माथे, ले आशीष विदा ली उनसे।
चले नहा लोहित सरिता में, सावधान हो कर तन मन से।।
राज्योद्यान सुभग अति सुन्दर, भांति भांति पुष्पों से सुरभित।
नागसुता निज सखियों के संग, वहां विचरती थी हो उलसित।।

शुचि पुष्प अगणित युक्त चम्पा पद्म गेंदा मोगरा।
सब भांति सुन्दर था मनोहर बाग सौरभ से भरा।।
हिमवर्ण लोहित सरित में मन्थर सलिल गतिमान था।
तट पर उसी के हाटकेश्वर लिंग देवस्थान था।।

शोभा सुन्दर बाग की, खिले पुष्प अत्यन्त।
मधुर मनोहर दृष्य था, दूर दृष्टि पर्यन्त।।
वहीं भ्रमण विचरण करे, सखियों के संग मुक्त।
आकर्षित हो लख रहे, अग्रसेन भय मुक्त।।

सखियों सहित थी माधवी पूजा वहां पर कर रही।
तब वैश्यपति की दृष्टि उन पर पड़ गई सहसा वहीं।।
वे सुन्दर उन्नत कुच युक्ता, परम मनोहर नाग सुताएं।
गौर वर्ण कटि क्षीण कामिनी, तीखे तीखे नयन युताएं।।
उनके मध्य सुकोमल सुन्दर, भुवन मोहिनी राजदुलारी।
चपला सी चंचल अति दृष्टि, चन्द्र किरण सी आभा प्यारी।।
महिधर नागराज की पुत्री, अग्रसेन जी के मन भाई।
अनायास ही चुपके चुपके, दृग पथ से आ हृदय समाई।।
तभी वहां गायों का पीछा, करता करता सिंह आ गया।
देख हुए भयभीत वहां सब, मौन भरा आतंक छा गया।।
किन्तु निडर हो अग्रसेन ने, निज कर शर औ चाप सम्हाला।
तीखे बाण चला कर नाना, क्रुद्ध सिंह के घेरा डाला।।[1]
हिंसक सिंह भयातुर होकर, विवश हुआ शर पिञ्जर भीतर।
प्राण बच गये गौ माता के, सुख सन्तोष सभी के मुख पर।।
यह सब दृष्य माधवी ने भी, देखा देख हृदय हरखाई।
अग्रसेन की अद्भुत करनी, मुखर मनोहर छवि मन भाई।।
सौम्य स्वरूप धैर्य चतुराई, साहस क्षमता सुन्दर सोहा।
कौशल युक्त धनुर्विद्या की, निपुणाई ने तो मन मोहा।।
इसी मध्य कुछ सखियां दौड़ी, अग्रसेन के पास आ गई।
कौतूहल वश घेर उन्हें वे, आस पास सब ओर छा गई।।
जिज्ञासा वश लगी पूछने, कौन कहां से आये हो तुम?
नहीं नाग से लगते हो तो, देव दनुज या मानव हो तुम?

अग्रसेन ने रख कर धनु नीचे, सहज भाव से स्मित आनन।
परिचय दिया आप ही अपना, हाथ जोड़ कर कर अभिवादन।।
सखियों ने जब वापस आकर, विवरण सारा कहा सुनाया।
हुई समर्पित आप माधवी, अग्रसेन को हृदय बसाया।।
मन ही मन निर्णय कर डाला, मैं तो वरण करूंगी इनको।[2]
मेरी ही खातिर करुणा कर, मां गौरी ने भेजा जिनको।।
ये हैं वीर सुदर्शन भी हैं,उत्तम कुल है बुद्धिमान हैं धैर्यवान हैं।
राजा भी हैं वैश्य वर्ण हैं निर्भय, भरा हृदय में स्वाभिमान है।।

अग्रसेन का शौर्य लख, जागा मन में प्यार।
कान्ति पुंज नर श्रेष्ठ पर, दिया हृदय को वार।।
हे मां मेरे भाग्य का, यही कान्त हो अग्र।
मन ही मन विनती करे, हुआ हृदय था व्यग्र।।

नयन द्वार से भीतर पैठे, हृदय गेह में आन समाए।
अब तो हृदय नाथ बन बैठे, इतने मन को मेरे भाए।।
हे माता तुमने कृपा करी है, इतनी कृपा और कर देना।
इसी सुदर्शन सौम्य वीर को, कान्त रूप में मुझको देना।।
वारम्वार सुमिर गौरी को, चरणों में अरजी धर दीनी।
हे मां करना पूर्ण कामना, हाथ जोड़ विनती कर दीनी।।
अपलक दीठि हो गई स्थिर, अग्रसेन के मुखारविन्द पर।
अमिट छाप छवि हो गई अंकित, नागनन्दिनी के उर भीतर।।
इसने देखा उसने देखा, दोनों ने दोनों को देखा।
देखा तो बस रहे देखते, निर्निमेष हो निर्भय देखा।।
कब तक देखा कौन बताए, चेत गवां सखियों ने देखा।
वृक्ष लता पुष्पो ने देखा, चंचरीक खगदल ने देखा।।
थे अवाक निश्चल निर्गति सब, स्थिर दीठि एक दूजे पर।
कौन मौन तोड़े कब तोड़े, कौन पहेली यह बूझे पर।।
तेज स्वरों ने तब झकझोरा, मन्दिर की घण्टा ध्वनि बोली।
चौंके सभी चेतना लौटी, सकुचाई तन्वङ्गी टोली।।
हुई लाल लज्जा से वनिता, पलटी पलट गेह को दौड़ी।
नहीं फेर मुख देखा फिर तो, कहां किधर कब सखियां छोड़ी!!

निर्निमेष निर्लज्ज दृग, कठिनाई से थाम।
लज्जा से हो लाल वह, हो गई और ललाम।।
थमे न पर गतिमान पग, हुई चेतना प्राप्त।
गमन गेह को कर गये, ले कर के उर आप्त।।

---

1. श्री अग्रभागवत द्वादश अध्याय
संरक्षविधिना तं. बाणैः गावं रक्षन ताड़यत।
शरनिचयस्तस्थो व्याघ्रं तं परिवार्य वर्च ।।35।।
2. श्री अग्रभागवत द्वादश अध्याय
अग्रसेन गुर्धानिधिं पश्यत निश्रा स्थिता।
पतिपत तं हि माधवी दत्त दृष्टिवैक्षित ।।38।।

संघर्ष

नर नाहर का खेल यह, देख हुआ आश्चर्य।
हत्प्रभ सेवक गुप्तचर, अद्भुत लख चातुर्य।।
नागसुता का भी लखा, होना अवश निढाल।
दौड़ गये तत्काल वे, नृप को कहने हाल।।

गुप्तचरों ने भी यह देखा, नृप को जा कर सन्देश सुनाया।
विचलित नागराज हो तत्क्षण, सैनिक दल को वहां पठाया।।
क्रुद्ध भयंकर विषधर अघदल, आ कर अग्रसेन पर धाया।
किन्तु धैर्य से किया सामना, रण कौशल अद्भुत दिखलाया।।
एक अकेले अग्रसेन ने, सब का बल खण्डित कर डाला।
सारे वार निरर्थक कर के, नागों को अचरज में डाला।।
तब तो हुआ क्रोध से काला, सैनापति चित्राङ्ग अघों का।
बोला व्यर्थ युद्ध यह नैतिक, रचूं स्वांग छल मैं नागों का।।
कर माया पन्नग ने घेरा, हो कर के अदृष्य सर्प शर मारा।
बांधा नाग रज्जु में छल से, जोर लगा कर अघ ने सारा।।
कर के विवश बनाया बन्दी, ले जा बन्दीगृह में डाला।
मन्त्रीवर के समझाने पर, निर्णय वध करने का टाला।।
रात गई जब भोर भई तो, सूर्य देव का आह्वाहन कर।
सविनय हाथ जोड़ की विनती, वंश पितामह आराधन कर।।
सूर्य कृपा है मुक्ति प्रदाता, यह तो जग जाहिर उक्ति है।
बन्धन सकल काट पाने की, सूर्योपासन ही युक्ति है।।
हे भुवन भास्कर सविता दिनकर, आप नियामक हैं सृष्टि के।
हम तो सदा प्रतीक्षक रविवर, सप्त किरण की कृपा वृष्टि के।।
कर्ता धर्ता भर्ता सब हैं आप, आप ही सब साधन के दाता।
आप सृष्टि के कारण हिरण्यमय आप ही हैं सकल प्रदाता।।
मैं सुत सूर्यवंश का अंश आपका, करता हूं कर जोड़ निवेदन।
मुक्त पितामह कर दो मुझको, कृपा करो यह काटो बन्धन।।

विनती सुन ली सूर्य ने, बढ़ा किरण अनुताप।
प्रखर प्रखरतम हो गये, हरने सुत संताप।।
अघ बन्धन उस ताप से, होकर विचलित सुस्त।
आप पलायन कर गया, कस्के उन्हें विमुक्त।।

रवि ने विनय सुनी किरणों को, तीव्र किया औ ताप बढ़ाया।
कटे ताप से बन्धन खुद ही, मुक्त हुआ वैदर्भी जाया।।
तीव्र ताप से विचलित हो कर, छोड़ गए अघ अग्रसेन तन।
मुक्त हुई बन्धन से काया, क्रियाशील मस्तिष्क हुआ मन।।
रवि किरणों से ऊर्जा व्यापी, स्वस्थ हुआ तन मन कुछ पल में।
मुक्त देख उनको भय चिन्ता, छाई रक्षक पन्नग दल में।।
दौड़े गये तुरत राजा ढिग, यह अनहोनी बात बताने।
इस मानव में देव शक्तियां, हैं अद्‌भुत अज्ञात जताने।।
नागराज ने सुन कर विवरण, तुरत मन्त्रियों को बुलवाया।
वर्तमान परिस्थितियां अद्‌भुत, से सबको अवगत करवाया।।
चिन्तन में डूबे मन्त्रीगण, चिन्ता घन सबके मुख छाये।
तभी वहां निर्भय निश्शंकित, अग्रसेन चल सन्मुख आये।।[1]
अक्समात यों राजसभा में, देख उन्हें सब हुए अचम्भित।
सभी सभासद इस घटना से, बैठे स्थिर से स्तम्भित।।
मौन तोड़ फिर अग्रसेन ने, परिचय अपना दिया सभा में।
सुना सभी ने सम्मोहित से, हो कर उनकी वाक् प्रभा में।।
नागराज ने परिचय पा कर, आसन दिया कुशल भी पूछा।
फिर हो कर आश्वस्त यहां तक, आने का कारण भी पूछा।।
अग्रसेन ने विनय सहित तब, यों अपना आशय बतलाया।
गुरु आज्ञा से नाग सुता संग, अपना ब्याह रचाने आया।।
उपवन में कल विचरण करते, इक दूजे को हमने देखा।
देव कृपा से ऐसा लगता, उर में खिंची प्रीत की रेखा।।
है मुझको विश्वास आपकी, पुत्री को भी यही लगा है।
मैंने लक्ष्य किया है उनके, मृदु वचनों में प्रेम पगा है।।
हे भुजंगपति आप पूज्य हैं, कर जोड़े यह विनय हमारी।

प्रणय सूत्र में हम बन्ध जाएं, यदि आयुष हो जाय तुम्हारी।।
नागराज सुन कर यह विनती, व्याकुल हुए हृदय में बोले।
यह कैसे सम्भव है मानव, कहो न बिन शब्दों को तोले।।
नाग मनुज का मेल नहीं है, हम तो सदा परस्पर वैरी।
शैव वैष्णवों के पथ हैं न्यारे, कैसे फले कामना तेरी।।
यह सपना मत देखो मानव, लौट देश को अपने जाओ।
अशुभ घटे कुछ पहले इसके, तुरत त्याग मम देश सिधाओ।।
तभी नाग रानी नागेन्द्री, सभा मध्य आकर यों बोली।
देख उन्हें सम्मान दे रही, अभिवादन करती अघ टोली।।
हे फणधारी नाथ हमारी, सदा सनातन यही परम्परा।
कन्या स्वयं वरण करती है, वह तो होती आप स्वयंवरा।।
अतः नाथ निर्णय से पहले, पूछ उसे यह भी तो जानें।
उसकी क्या इच्छा है स्वामी, बात माधवी की भी मानें।।
उसने वरण कर लिया इनको, मुझसे उसने यही बताया।
यह मानव बलशाली सुन्दर, सुता माधवी के मन भाया।।
उसने तो इसकी खातिर ही, मां गौरी का व्रत रखा है।
वरे इन्हें या रहे कुंआरी, उसने अपना मत रखा है।।
सभी सभासद हुए अचम्भित, सुन कर यह बातें रानी की।
यह कैसी है होनी अनहोनी, घटना यह तो है हैरानी की।।
राजपुरोहित तब यों बोले, यह गम्भीर विषय अति भारी।
राजसुता यदि चाहे ऐसा, तो करना यह है लाचारी।।
तभी महर्षि उद्दालक भी, प्रकट हुए मन्थर गति आकर।
राजा रानी सभी सभासद, धन्य हो गये दर्शन पा कर।।
दे आशीष सन्त ने उनको, अमृत वाणी में समझाया।
सुनो माधवी अग्रसेन का, विधना ने है योग बनाया।।

सुनो महीधर ध्यान से, विधि का यही विधान।
परिणय दोनों का करो, मेरा कहना मान।।
बैर शत्रुता त्याग कर, पा लो इससे त्राण।
नर नागों के मेल से, होगा जग कल्याण।।

इनका मेल जगत हितकारी, जन जन का कल्याण करेगा।

दुःखी प्राणियों का इस जग में, पीड़ा से परित्राण करेगा।।
निर्भय हो निश्शंक नागपति, इन दोनो का ब्याह रचाओ।
नर नागों में हो जाय मित्रता, आगे बढ़ कर राह बनाओ।।
ऋषि का यह आदेश सभी ने, आज्ञा मान सहज स्वीकारा।
निर्णय सुना माधवी ने भी, हर्ष उसे अति हुआ अपारा।।
ऋषि आज्ञा पत्नी की इच्छा, कन्या का अधिकार वरण का।
सबका कर सम्मान हुआ तब, समुचित निर्णय मणिधरण का।।
शुभ सन्देश निमन्त्रण भेजा, महिधर ने फिर दूत पठा कर।
ले बारात पधारो सब जन, सविनय कहो अग्रघर जा कर।।
दूत चला शुभ सन्देशा ले कर,गण आग्रेय नगर में आया।
ऋषिवर गर्ग गुरु ढिग जाकर, सविनय शुभ सन्देश सुनाया।।
गण आग्रेय हर्ष में डूबा, समाचार मन भावन सुन कर।
जुटे सभी बारात सजाने, उर उल्लास भरे गुन गुन कर।।
उधर सजे बारात अग्र घर, इधर करें स्वागत तैयारी।
दोनो ओर मनाते उत्सव, भरे उमंगे उर नर नारी।।
किन्तु महीधर का यह निर्णय, सर्पदंश को नहीं सुहाया।
वह विषाक्त अति नाग भयंकर, भर अमर्ष अतुलित अकुलाया।।
वह तो खुद ही था अभिलाषी, नागसुता की दया दीठि का।
जाने कब से था लालायित, पात्र बने उस मधुर दीठि का।।
क्रोधित हुआ मार्ग का कण्टक, अग्रसेन को उसने माना।
उसे हटाने पथ से अपने, कोप चाप तब उसने ताना।।
रात हुई ले कटक विषधरी, अग्रसेन पर धावा बोला।
अग्रसेन ने भी निर्भय हो, अपने धनु पर उसको तोला।।
हुआ भयंकर युद्ध सर्प ने, अगणित बाण विशैले छोड़े।
सोख गरल को किया निरर्थक, सुधा शरों ने सपने तोड़े।।
अग्रसेन के आगे उसकी, रण कौशलता काम न आई।
व्यर्थ वार सब हुए सर्प के, हारे बल छल औ कुटिलाई।।
हो हताश सब दांव गंवा कर, सर्पदंश ने विषघट फोड़ा।
अग्रसेन की ओर लक्ष्य कर, विषधर आयुध उस पर छोड़ा।।
तब विद्या गुरु की चित आई, अग्रसेन ने उसे पुकरा।
अस्त्र पिपीलिका[2] आह्वान कर, खींच दुष्ट पर उसको छोड़ा।।
सर्पदंश के विषधर कोई, सहन नहीं उसको कर पाये।

हो कर विवश वहीं तत्क्षण ही, सबने अपने प्राण गंवाये।।
सुन सन्देश नागपति महिधर, संग उद्दालक वहां पधारे।
मन्त्र शक्ति से ऋषिवर ने निज, विष प्रभाव के संकट टारे।।

सर्पदंश इक नाग ने, विष के किये प्रहार।
अस्त्र पिपिलिका से किया, उसका भी संहार।।
किन्तु वायु में घुल गया, था जो विष का अंश।
मन्त्रों से ऋषि ने किया, निष्फल उसका दंश।।

---

1. श्री अग्रभागवत अध्याय पन्द्रह
अथ भुजंगभवने परसं संवीक्ष्य स मनोरम।
अग्रसेनो व्रविवेश महीधरस्यमंदिरं महत्तरम्।।14।।
2. राष्ट्रपुरूष महाराजा अग्रसेन- आचार्य रामरंग - आवेदन
''पिपिपिकास्त्र तो उन्हें (अग्रसेन को) धनुर्वेद के प्रकाण्ड पण्डित आचार्य द्रोण के श्रेष्ठ शिष्य महाधनुर्धर धनंजय अर्जुन से प्रसाद स्वरूप प्राप्त हुआ।''

आठ

वरण

मणिपुर नागों का नगर, पग पग मायाजाल।
रखे मानवों के लिये, बैर हृदय में पाल।।
वे ही आज निहारते, आतुर उर से बाट।
स्वागत में उनके लिये, बिछा पथों में ठाट।।

समय बीतते समय न लागा, मणिपुर में बारात आ गई।
नागलोक की शोभा अनुपम, अग्रों को हद भांत भा गई।।
मणिकांचन सज्जित गृह तोरण, हर द्वारे पर वैभव झलके।
नर पुंगव नारी रसिकाएं, अधर अधर से अमृत छलके।।
उपवन सर सरिता रस निर्झर, कण कण पर निखरी सुन्दरता।
तरु पल्लव पुष्पित लतिकाएं, पग पग पर पसरी मधुरसता।।
गुरुवर गर्ग संग सब आए, अग्रबन्धु बारात सजा कर।
ले जायेंगे नागसुता को, बहू बना कर ब्याह रचा कर।।
धूम धाम से ब्याह हो गया, नाग नरों में हुई मित्रता।
एक हो गई दो धाराएं, विस्मयकारी यही विचित्रता।।
नागराज की अन्य पुत्रियां, भी थी अति कमनीय कामिनी।
उनकी रूप शिखा यों दमके, दमके ज्यों घन बीच दामिनी।।
नागराज ने जामाता से, किया निवेदन हाथ जोड़ कर।
हे नर श्रेष्ठ अनुग्रह कीजे, इनसे भी गठजोड़ जोड़ कर।।
ये मेरी सब अन्य सुताएं, हैं गुणवन्ती सुघड़ सजीली।
ललित कला में निपुण सभी हैं, संकोची भी सहज लजीली।।
इन्हें करें स्वीकार संगिनी, मेरी तुमसे यही प्रार्थना।
प्रेम सहित इनको अपना लें, यही आपसे करूं याचना।।
सुन कर यह अनुरोध हृदय में अग्रसेन के पीड़ा व्यापी।
यह है अनुचित कर्म सर्व विधि, मात्र इसे अपनाते पापी।।
कैसा यह प्रस्ताव पिताश्री, मुझे पाप करने को कहते।

भला सोच भी लूं मैं कैसे, प्रिया माधवी के संग रहते।।
नाग सुता की बहिने सारी, मेरी भी तो बहिने ही हैं।
उनसे परिणय की मैं सोचूं, किसी भांति यह उचित नहीं है।।
मैं हूं एक पत्नीव्रत धारी, मुझे न दूजा ब्याह रचाना।
अर्धाङ्गिनी माधवी मेरी, मात्र प्रिया बस उसको माना।।
तात् आप ज्ञानी गुण शाली, धर्म नीति के ज्ञाता पूरे।
फिर ये कैसे वचन कह रहे, नीति विरुद्ध अधर्म सपूरे।।
क्षमा करें मुझको हे अघवर, मैं न इसे स्वीकार सकूंगा।
शपथ मुझे मां श्री चरणों की, एक पत्नीव्रत सदा रहूंगा।।
सहज धर्म अनुकूल आचरण, अग्रसेन की सुन कर बानी।
नाग नन्दिनी प्रिया माधवी, गर्वोन्नत मन में हरखानी।।
नागराज महिधर मन हरखे, नागेन्द्री रानी हरखाई।
गुरुवर गर्ग भये अति भावुक, नयन स्नेह की आभा छाई।।
अघपति सहित नाग सब हर्षित, ऋषि उद्दालक भी गर्वित थे।
सुन संकल्प सभी नर नारी, नागलोक के भी गर्वित थे।।
युगों पूर्व था त्रेता युग में, श्री रामचन्द्र ने यह व्रत पाला।
अग्रसेन ने अब यह धारा, सबको ही गर्वित कर डाला।।

यह अवतारी महा पुरुष है,
युग युग नाम कमाएगा।
हर युग में यह द्वापर युग का,
रामचन्द्र कहलाएगा।।

नागराज ने अति प्रसन्न हो, सार्वजनिक उद्घोष कर दिया।
नागलोक के सात तलों में, एक अग्र के नाम कर दिया।।
नाम अग्रतल इसी क्षेत्र का, अब से घोषित हुआ तय रहा।[1]
अगरतला त्रिपुरा में गाथा, यह गौरव की हमें कह रहा।।
हंसी खुशी दिन बीत गए कुछ, नागलोक में मोद मनाते।
मांगी विदा चले यह कह कर, सदा रहेंगे आते जाते।।
दिवस चार रुक अग्रसेन जी, सदल पुनः निज देश सिधाए।
नागराज ने मणि माणिक रथ, घोड़े गज अति संग पठाए।।

ऋषिवर गर्ग सहित महाराजा, अग्रसेन संग प्रिया माधवी।
चले देश को स्वागत करते, मिले मार्ग में विविध राजवी।।
यों पाते सम्मान सब जगह, पथ में रातें सात बिताई।
दिवस आठवें को रवि रहते, नगरी अपनी पड़ी दिखाई।।

रानी ले कर आ गये, लौट सहित बारात।
समधि अपना हो गया, नाग वंश विख्यात।।
खुशियां छाई नगर में, घर घर में उल्लास।
मुख पर गुरु मां बन्धु के, झलका मधुर सुहास।।

.....

1. श्री अग्र भागवत अध्याय 17
पश्यतां सर्व नागानां नागराजो वाक्यं ब्रवीत।। 50।।
इदं लोके तलोत्तमद्य अग्रस्य नाम्नातं भाषते।। 51
संस्कृतेभ्यो सर्वश्च सुरमण्यो भविष्यति।
नाम्ना अग्रतलस्य त्रिषु लोकेषुविश्रुता।। 52

संकट

ब्याह रचा कर आ गए, धन्य हुआ अग्रोक।
नर्तन से अब अग्रजन, निज को सकें न रोक।
धन्य हुआ अग्रोक, हर्ष सबके उर भारी।
उमगे उमगे फिरें, नगर के सब नर नारी।।
घर घर उत्सव हो रहा, सबके मन उत्साह।
अग्रसेन महाराज प्रिय, आये कर के ब्याह।।

नगरी के द्वारे पर आकर, धूम धड़ाके गाजे बाजे।
स्वागत को उमड़े नर नारी, पुर वासी रथ घोड़े साजे।।
मातु भगवती वैदर्भी भी, शूरसेन लघु भ्राता के संग।
संरक्षक ऋषि सौम्य पधारे, हर्षित मन औ पुलकित ले अंग।।
स्वागत किया करी अगवानी, हर्ष दोगुना ले कर मन में।
निज राजा रानी दर्शन की, ललक लगी जन जन के मन में।।
शुभ मुहुरत शुभ वेला लख कर, करी आरती नजर उतारी।
कुंकुम पांव माण्डती अंगना, आई नागसुता बहुरानी प्यारी।।

मां वैदर्भी आरती, करती नजर उतार।
ललनाएं मिल महल की, खड़ी रोक कर द्वार
नेग चुका सम्मान से, घर में किया प्रवेष।
नागसुता का आगमन, ले शुभ का सन्देश।।

मंगल गान महल में होते, नृत्य नगर के चौराहों पर।
बजे बधाई बंटे मिठाई, वन्दनवार सजे द्वारों पर।।
मां तो मिली अनुज घर आए, नागसुता सी भार्या पाई।
निष्कण्टक निज राज्य बसाया, वैभव की जिसमें प्रभुताई।।
किन्तु इन्द्र थे रुष्ट कामना, उनकी पूर्ण नहीं हो पाई।

अग्रसेन के कारण ही तो, उनके पथ में बाधा आई।।
नागराज महीधर तो अपनी, सुता ब्याहने को राजी थे।
किन्तु बीच में अग्रसेन के, आ जाने से हारे बाजी थे।।
इसी लिये कर कोप उन्होने, रोक दिया बरखा रानी को।
गण आग्रेय रह गया सूखा, तरस गया जन जन पानी को।।
एक वर्ष दो वर्ष निरन्तर, पड़ता रहा अकाल भयंकर।
अन्न और जल संकट भारी, भूख प्यास की पीड़ा घर घर।।
अग्रसेन ने हार न मानी, नदियों से नहरे बनवा दी।
ग्राम नगर ढाणी ढाणी में, कूप वाव नाडी खुदवा दी।।
खेत खेत में पानी पहुंचा, सर वापी को भरा नहर से।
कण्ठ हुए तर धरा धपाई, खेत हरे भरपूर फसल से।।
यह सब देख इन्द्र फिर कोपा, कटक सजा चढ़ आया उस पर।
रणभूमि में आ ललकारा, ऐरावत आरूढ़ गरज कर।।
अग्रसेन भी समरांगण में, डटे हुआ रण अतिशय भारी।
बहुत दिनों तक चला समर वह, लगा दांव पर शक्ति सारी।।

हुआ भयंकर युद्ध तब, देव मनुज के मध्य।
कुटिल इन्द्र था अग्र पर, सीधा सत पथ सध्य।।
नीति अनीति मध्य था, टना युद्ध विकराल।
विनयशील थे अग्र तो, दम्भित था सुरपाल।।

विविधायुध इन्द्र ने अपने, चुन चुन अग्रसेन पर मारे।
किन्तु व्यर्थ सबको कर डाला, अग्रसेन ने उसके सारे।।
अन्तिम अब आयुध था केवल, वज्र इन्द्र ने उसे सम्हाला।
किन्तु तभी आ मध्य वृहस्पति, जी ने विघ्न युद्ध में डाला।।
बोले क्यों लड़ते हो दोनो, मति मारी क्या गई तुम्हारी।
खड़ा विश्व में क्यों करते हो, निजी स्वार्थ वश संकट भारी।।
अरे इन्द्र क्यों लाज न आती, नीच कर्म यह करते तुमको।
मोह एक नारी का पाले, डाल रहे संकट में सबको।।
बन्द करो लड़ना आपस में, इसमें नहीं किसी का हित है।
यह संहार विपत्ति का मारग, इसमें जग का छिपा अहित है।।
बैर छोड़ अब करो मित्रता, यही तुम्हें शोभा देता है।

समर्थ व्यक्तियों का झागड़ा तो, जग भर को रोभा देता है।।
अग्रसेन ने हाथ जोड़ कर, सविनय शीष नवाया पग में।
गुरुवर सत्य आपका कहना, नहीं किसी का हित इस डग में।।
मैं लज्जित हूं किन्तु विवश, हो कर ही मैंने शस्त्र उठाया।
फिर भी देव उपस्थित हूं मैं, मुझे दण्ड दो जो मन भाया।।
क्षमा करें गुरु मुझे दया कर, बोला इन्द्र स्वयं खिसियाया।
परख रहा था मैं तो इनको, इसीलिये यह स्वांग रचाया।।[1]
धैर्य धर्म से जन पालन की, क्षमता इनकी जांच रहा था।
इसीलिये गुरुवर मैं इन पर, डाल युद्ध की आंच रहा था।।
अब तो मैंने परख लिया है, यह नर अडिग धैर्यशाली है।
इसके बल शक्ति साहस की, थाह सकल मैंने पा ली है।।
यही उचित अब होगा गुरुवर, इनसे स्थिर करूं मित्रता।
तज दूं वैर ईर्ष्या रिपुता, रखूं मेल बस यही सत्यता।।
गले मिले दोनो रिपुता तज, क्षमा मांगते देत बधाई।
लिये दिये उपहार भेंट सब, प्रेम सहित तब हुई विदाई।।

देव गुरु के यत्न से, हुआ परस्पर मेल।
गले मिले कर मित्रता, बैर द्वेष को ठेल।।
संकट सारे टल गये, अब निष्कण्टक राज्य।
सुख सम्पत्ति धन सम्पदा, बरसेगी अविभाज्य।।

---

1. श्री अग्रभागवत अध्याय उन्नीस
भूय एव तदा शीलं जिज्ञासुः व्यसृजत देवर्षिः।
संख्य चानन्तमिच्छामि अग्रसेननरोत्तमः।।54।।

दस

परिवार

सुरपति से कर मित्रता, सबल हुआ साम्राज्य।
निष्कण्टक सब ओर से, अग्रोहा गण राज्य।।
अब नरपति निज राज्य की, करने लगे सम्हाल।
आहत था जो झेल कर, वर्षो अथक अकाल।।

इन्द्र गया निज देश लौट कर, तब अग्रसेन आग्रेय पधारे।
शासन पर दे ध्यान उन्होने, निज नगरी के हाल सुधारे।।
अब तो दोनो भ्राता मिल कर, अग्र राज्य का रूप निखारें।
कैसे जनपद रहे निरापद, सभा मध्य नित यही विचारें।।
अग्रसेन के पुण्य राज्य में, जनपद में सब सुख सुविधा थी।
अष्ट सिद्धि नव निधि से पूरित, सुखी सकल सब भांति प्रजा थी।।
वेद अध्ययन में रत रह कर, विप्र सदा थे चिन्तन करते ।
क्षात्र धर्म में निपुण क्षत्रिय जन, वैश्य सभीका पालन करते।।
अन्य सभी जन सेवा में रत, निज कर्तव्य सभी करते थे।
तन मन से थे स्वस्थ सभी जन, राष्ट्रधर्म पालन करते थे।।
सत्यव्रती थे पुरुष नारियां, पतिव्रत धारी धर्म धारिणी।
मां लक्ष्मी के सब आराधक, जो सबको सब भांति तारिणी।।
वृक्ष लता पादप सब भांति , पत्र पुष्प फल सब देते थे।
सरिता सर जल कूप बावड़ी, अमृत नीर सदा देते थे।।
नहीं घरों में ताले लगते, चौर्य कर्म से नगर निरापद।
रामराज्य से आगे बढ़ कर, पूर्ण सुरक्षित था वह जनपद।।
वहां स्वयं लक्ष्मी जी जैसे, सर्व सिद्धियों सहित विराजे।
गांव नगर घर घर में सुखमय, शान्ति चैन की बंशी बाजे।।
नगर चौक में लगते रहते, नित नित उत्सव प्रतिदिन मेले।
नाचें गायें सब नर नारी, नहीं दुःखों के कहीं झमेले।।
नर नारी चर सेवक मालिक, सबके थे अधिकार बराबर।

राजा प्रजा सचिव या चाकर, नहीं किसी में भेद सरासर।।
मां लक्ष्मी के भक्त सब, लक्ष्मी सबको सिद्ध।
दीन हीन दारिद्र्य से, नहीं कोई आबिद्ध।।
सुख सम्पति सम्पन्न थे, जन जन सब आकण्ठ।
नगरी जैसे बस गया, हो भू पर बैकुण्ठ।।

नगर मध्य मां लक्ष्मी मन्दिर, जहां रात दिन होती पूजा।
यों लगता धरती पर जैसे, बसा दिया बैकुण्ठ ही दूजा।।
महाराजा श्री अग्रसेन में, निष्ठा थी जन जन की पूरी।
प्रजा और प्रजा पालक के, मध्य नहीं रहती थी दूरी।।
पिता पुत्र सा नाता उनमें, जगत पिता ज्यों पालन करते।
सदा सूर्य सम जनता के हित, अग्रसेन बन साधन रहते।।
शीतल शशि से शुभकर सबको, श्रीविष्णु सम बन रखवाले।
जन जन के मन में बसते थे, अग्रसेन के सब मतवाले।।
यों जनपद में सदा सुमंगल, सुखद सकल छाया रहता था।
धनकुबेर सुरपति मां लक्ष्मी, सबका वास सतत रहता था।।
शौर्य पराक्रम शक्ति सभी में, नहीं किसी की क्षमता उनसे।
नहीं किसी का भय था उनको, सभी स्वयं भय खाते उनसे।।

अग्रसेन के राज में, जन जन था सम्पन्न।
राजकोष भरपूर था, भण्डारों में अन्न।।
नव आगन्तुक भी वहां, पाता समुचित प्यार।
एक ईट मुद्रा उसे, देता प्रति परिवार।।

निर्भय और निरापद शासन, आग्रेय राज में यों चलता था।
उस निष्कण्टक अग्रराज्य में, पूत बना जन जन पलता था।।
नित नित वहां प्रवासी आते, आते और वहीं बस जाते।
सुख सुविधायुत देख सुरक्षा, लौट कभी वापस ना जाते।।
इसी भांति यश ख्याति बढ़ी तो, अग्रसेन जग के मन भाये।
आस पास के छोटे जनपद, सभी शरण में उनके आये।।
राज्य बढ़ा विस्तार बढ़ा तो, उसे अलग क्षेत्रों में बांटा।

भाग किये अट्ठारह उसके, पृथक क्षेत्रपति गण में छांटा।।
इस भांति होकर विस्तारित, जनपद फैला भरत खण्ड में।
उत्तर दक्षिण पूरब पश्चिम, अनुशासित हो एक दण्ड में।
देव लोक से हुई मिताई, नाग लोक सम्बन्ध निभाया।
दुर्गम मरु के जन मानस को, अग्रसेन का शासन भाया।।
हिमगिरि के चरणों को छू कर, गंगा यमुना तक जाता था।
इधर अरावलि को घेरे था, गुर्जर ठेट तलक आता था।।
दक्षिण प्रतापनगर तो था ही, कोल्हापुर तक भी पसरा था।
सुघड़ व्यवस्थित शासन जिसमें, क्षेत्र न कोई भी बिसरा था।।
है ऐतिहासिक साक्ष्य प्रमाणित, वैश्य राज्य विस्तृत था इतना।
नहीं जिसे सकता झुठलाया, यत्न करे फिर कोई कितना।।[1]
इसी भांति सुखमय शासन के, बरस बीतते गये तदनन्तर।
प्रिया माधवी महारानी से, सुत अट्ठारह हुए निरन्तर।।
कुल को धारण करने वाले, कुल का नाम चलाने वाले।
वे अट्ठारह पुत्र सुलक्षण, यशकुल कीर्ति कमाने वाले।।
जिनके नाम दिये विभु विक्रम, अजय विजय अनल नीरज।
अमर नगेन्द्र सुरेश श्रीमन्ता, सोम अतुल अशोक धरणीधर।।
सिद्धार्थ सुदर्शन और गणेश्वर, तथा लोकपति दिये शुभंकर।
जात कर्म उपनयन कराए, गुरु ने विधिवत यज्ञ करा कर।।
एक सुता गुणवती सुलक्षण, नाम ईश्वरी उसका दे कर।
आनन्दित हो शासन करते, धर्म युक्त जीवन व्रत ले कर।।
सभी पुत्र पुत्री अति सुन्दर, शास्त्रार्थ में कुशल गुणी थे।
थे आचारी औ व्यवहारी, भाग्यशील और महा बली थे।।
पुण्यकर्म वे करने वाले, कारण यश के थे सुशील थे।
मातु पिता गुरु के प्रति वे, नित आज्ञाकारी विनयशील थे।।
थे प्रतिरूप पिता के ही सुत, नीति न्यायमय सद् आचारी।
धर्मनिष्ठ मां लक्ष्मी पूजक, सत्य अहिंसा प्रेम पुजारी।।
सुता स्नेह ममता की मूरत, रोम रोम में कुल की निष्ठा।
करुणा भरी हृदय में भारी, विनयशील नारी शर्मिष्ठा।।
मात पिता ने सुवर खोज कर, उसे सूत्र परिणय में बांधा।
काशी राजकुंवर अति सुन्दर, नाम महेश्वर के संग साधा।।

सुता ईश्वरी के लिये, खोजा सुन्दर साथ।
काशीपति के पुत्र को, सौंपा उसका हाथ।।

नागराज विख्यात वासुकी, महाबली औ महा यशस्वी।
कीर्ति पताका जिनकी फहरे, जग में वे महाराज मनस्वी।।
निज वे कन्याओं का रिश्ता, पुत्र अठारह हित ले आए।
अग्रसेन को निज समान ही, नृप के अति प्रस्ताव सुहाए।।
वैश्य वर्ण है नाग वंश भी, सब को यह सम्बन्ध सुहाया।
मां पत्नी और अनुज सभी के, यह सम्बन्ध हृदय को भाया।।
गुरु से भी आशीष मिल गई, अग्रसेन तब अति हरखाए।
उसे किया स्वीकार शीघ्र ही, ब्याह सभी को घर ले आए।।
सुघड़ सोहिनी और सुलक्षिणी, घर में बहुएं सभी आ गई।
राजमहल नगरी में घर घर, सकल राज्य में खुशी छा गई।।

पुत्र अठारह जो हुए, चले पिता की राह।
नागवंश में ही हुए, उनके सबके ब्याह।।
एक सुता थी गुणवती, जिसका रूप अथाह।
काशी के युवराज संग, किया सुता का ब्याह।।

---

1. अग्रसैन और अग्रवाल - वैद्य श्री कृपाराम अग्रवाल पृष्ठ सं. 17
   भूगोल नं. 1 - अग्रसैन साम्राज्य
2. बौद्धग्रन्थ ' मंजूश्रीमूलकल्प'
   वैश्यै परिवृता वैश्यंनागाह्वैयो समन्ततः।।75।।

यज्ञ

सम कुल वंश समाज में, होता जब सम्बन्ध।
सन्तति होती श्रेष्ठ तब, शास्त्रों का उपबन्ध।।
गुण गरिमा सामर्थ्य में, उत्तम हो सन्तान।
निज समाज में ब्याह का, इससे रखा विधान।।

उत्तम पुरुष नारियां उत्तम हों, तो सन्तति उत्तम होती है।
उत्तम वंश वर्ण सम हो तो, वंश वृद्धि भी उत्तम होती है।।
इस प्रकार अपने समान ही, जाति वर्ण में ही विवाह हो।
तभी समाजों का समुचित विधि, से पूरा पूरा विकास हो।।
वही श्रेष्ठ होती है सन्तति, जो समान कुल के युग से हो।
उन सब में वैशिष्ट्य वही जो, मात पिता के भी युग में हो।।
इसीलिये इन सन्तानों में भी, गुण वे ही सब के सब आये।
जिन गुण और विशिष्टताओं से, अग्रसेन थे सबको भाये।।
इन्ही गुणवती सन्तानों से भी, और हुई सद्गुण सन्तानें।
कुल परिवार बढ़ा द्रुत गति से, हुई शताधिक जब सन्तानें।।
तब सोचा इस महा वंश को, करूं व्यवस्थित कीर्ति बढ़ाऊं।
करूं यज्ञ इन सब के हित में, स्थापित कुल में कर जाऊं।।
यही सोच कर रची योजना, यज्ञ अठारह ही करने की।
एक एक सुत का हित चिन्तन, पौ बारह उनकी करने की।।
यज्ञों से होती श्री वृद्धि, अन धन वैभव बढ़ता भारी।
ज्ञान बुद्धि बल वर्धन होता, समृद्ध होती सन्तति सारी।।
कुल कल्याण सत्य निश्चित है, होता है कल्याण लोक का।
मन पावन हो देव प्रफुल्लित, पट खुल जाता ब्रह्मलोक का।।
गुरुवर से जा आज्ञा मांगी, ऋषिवर के उर आनन्द छाया।
आज्ञा दी आशीष दे दिया, अग्रसेन का मन हरखाया।।
इसीलिये यह निर्णय उत्तम, अग्रसेन जी ने कर डाला।

जग कल्याण वंश हितकारी, आयोजन अनुपम कर डाला।।
यज्ञ वेदियां बन गई, विधि विधान अनुसार।
मण्डप फूलों से सजे, मंगल तोरण द्वार।।
गुरुवर गर्ग प्रधान थे, ऋषि आये विद्वान।
प्रिया माधवी संग थे, अग्रसेन यजमान।।
दिवस अठारह तक चला, यज्ञोत्सव निर्विघ्न।
अन्तिम दिन बलि के समय, हुआ उपस्थित विघ्न।।

यज्ञ प्रमुख आचार्य बने थे, ऋषिवर गर्ग महा थे ज्ञानी।
कर्म काण्ड के सब विधि ज्ञाता, वेद विज्ञ अति वे विज्ञानी।।
सर्व भांति विधि सम्मत सारे, यज्ञ कर्म नित करवाते थे।
भूपति अग्रसेन मय रानी, सहज सभी व्रत अपनाते थे।।
मन्त्रोचारण कर के ब्रह्मा संग, देव गणों को आहूत किया।
श्रृद्धा औ सम्मान सहित फिर, सबको अर्घ्य प्रदान किया।।
महाराज नित प्रेम भाव से, बन कर यजमान बैठते थे।
यज्ञ विधा के सब कर्मो में, तन मन सहित पैठते थे।।
आहुतियां दे दे श्रृद्धा से, धर्म कर्म नित वे करते सारे।
सर्व शान्ति की चाह लिये थे, जन कल्याण हृदय में धारे।।
इसी तरह सत्रह दिन बीते, कार्य हुआ सब विधि विधान का।
अन्तिम दिन था कार्य पूर्ति का, पूर्णाहुति में बलि प्रदान का।।
उस दिन बलि का अश्व यज्ञ में, ज्यों ही आया तो घबराया।
देख उसे पीड़ित करुणा से, अग्रसेन का उर अकुलाया।।

यज्ञकक्ष में अश्व को, लख बलि हित तैयार।
अग्रसेन के हृदय में, उठा भयंकर ज्वार।।
यज्ञों में वध जीव का, यह कैसा है धर्म?
निश्चय ही यह पाप है, है पैशाचिक कर्म।।

बोले यह कैसा विधान है, ऋषिवर यह तो महा पाप है।
यह तो घोर जघन्य कर्म है, क्योंकर करते यहां आप हैं।।
यज्ञ कर्म तो देव कर्म है, जग मंगल करने का साधन।

उनके लिये प्राणियों का वध, यह कैसा है देवाराधन।।
नहीं कर्म यह उचित कदापि, पशु बलि किसी यज्ञ में देना।
यह तो धर्म नहीं हो सकता, यह तो पाप स्वयं शिर लेना।।
मैं दुष्कर्म नहीं कर सकता, पशु बलि है स्वीकार न मुझको।
बलि का अर्थ नहीं वध करना, यह अधिकार नहीं है मुझको।।
बलि का है तात्पर्य समर्पण, जो निज का है अर्पण करना।
उस परमेश्वर से पाना है तो, फिर उसे समर्पण करना।।
हे ऋषिवर कर जोड़ प्रार्थना, मैं करता हूं आज आप से।
यह है घृणित कार्य पशु बलि का, इसे रोक दें तुरत आज से।।
पत्र पुष्प नैवैद्य अन्न की, फल घृत की ही बलि दें ऋषिवर।
इससे पर्यावरण सुवासित, आप प्रफुल्लित होंगे प्रभुवर।।
यह कैसे हम करें कल्पना, हिंसा से प्रभु होते राजी।
उनकी ही सन्तानों के हम, प्राण हरें औ वे हों राजी।।
मानवता यह कैसे गुरुवर, यह तो ऋषिवर दानवता है।
क्रूर मानसिकता का यह दर्शन, इसमें नहीं सदाशयता है।।
मुझे क्षमा कर दें मेरा मन, नहीं क्रूरता से है सहमत।
पशु बलि से प्रभु नहीं रीझते, यह निश्चित मेरा है अभिमत।।
अतः यज्ञ में पशु बलि टालें, यह दूषित दुष्कर्म बन्द हों।
भाव भक्ति पावन मन लेकर, रत इसमें सब पुरुष वृन्द हों।।
यह पवित्र सत्कर्म समारोह, इसे रक्त से करे न लांछित।
शुद्ध सात्विक ही रहने दें इसे, सुफल यदि पाना वांछित।।
रक्त नहीं रस से हों राजी, उन्हें क्रूरता नहीं सुहाती।
प्रेम प्रार्थना करो पसीजे, करुणा सदा देव को भाती।।
हे गुरुवर यह विनय हमारी, कुत्सित कर्म इसे बस त्यागो।
जिससे हो हित अहित न होवै, वही करो सब दुविधा त्यागो।।
वध हिंसा शोणित मांसादि, ये सब अधम कर्म पैशाचिक।
असुर निशाचर दुष्ट जनों का, घृणित आचरण यह वैचारिक।।
इसीलिये मैं विनय कर रहा, त्यागें यह तो पाप कर्म है।
करे समर्पण श्रद्धानत हो, बलि देने का यही मर्म है।।

बलि का आशय वध नहीं, बलि का मतलब त्याग।
यज्ञों में बलि दीजिये, करें अहम् का त्याग।।
जीव मात्र सन्तान हैं, उस प्रभु की ही मान।

उनके वध का यज्ञ में, कैसे उचित विधान।।
बात हृदय को लगी सभी के, ऋषिवर विप्र सभी ने माना।[1]
हिंसा तो है पाप अहिंसा, से हो यज्ञ गूढ़ भेद यह जाना।।
श्रीफल घृत नैवैद्य मिला कर, पूर्णाहुति में बलि सब ने दी।
यज्ञ हुए सम्पन्न अठारह, उन्हें आशीष ऋषि विप्रों ने दी।।
यज्ञ सभी सम्पन्न हुए औ, आये थे जो विघ्न टल गये।
खिले कुसुम से आनन सबके, राजा अब महाराज बन गये।।
छत्र चंवर कर भेंट उन्हें फिर, छत्रपति पद पर बैठाया।
हुए छत्रपति अग्रसेन तो, गण आग्रेय सकल हर्षाया।।

ऋषियों की आशीष से, यज्ञ हुए सम्पन्न।
अब न रहेगा राज्य में, कोई कहीं विपन्न।।
सुत सन्तति सब में हुआ, उर्जा का संचार।
सद्गुणशाली वे हुए, नाशे सकल विकार।।

---

1. अहिंसा ही सभी धर्मों में श्रेष्ठ है। इसके पालन की प्रतिज्ञा लेकर ही व्यक्ति आगे बढ़ सकता है। महाराजा अग्रसेन का यह उद्घोष सुन कर वहां उपस्थित सभी लोगों ने प्रतिज्ञा की '' अहिंसा धारण करने योग्य धर्म है, मैं सदा इसका पालन करूंगा।''
- डॉ. स्वराज्यमणि अग्रवाल - सम्पूर्ण अग्रसेन उपाख्यान

विद्वेष

यज्ञ अठारह हो गये, सफल हुए सब काज।
हिंसा का पथ तज बने, अग्रसेन महाराज।।
कायरता का भूप कुछ, उन पर धर आरोप।
चढ़ आये रणखेत में, कर के भारी कोप।।

किन्तु कई क्षत्रिय राजा जो, पशु बलि के थे प्रबल समर्थक।
इससे हुए रुष्ट अति क्रोधित, ठान लिया बस बैर निरर्थक।।
वह शठ वैश्य बन गया राजा, यज्ञ किये सम्राट बन गया।
ऋषियों का भी उस पामर को, कैसे आशीर्वाद मिल गया।।
अब तो उसने पशु बलि को भी, यज्ञों में वर्जित कर डाला।
ऐसा कर उसने हम सबको, सुनो कलंकित ही कर डाला।।
ऐसा ही होता रहा अगर तो, नाम हमारा मिट जाएगा।
वैश्य प्रतिष्ठित होगा जग में, क्षात्र धर्म तो पिट जाएगा।।
इसीलिये कि इसके पहले, हे मित्रों ऐसा कुछ हो जाए।
हमीं नाश उसका कर डालें, एक साथ मिल कर हम जाएं।।
रच कर सब षड़यन्त्र कटक ले, अग्र राज्य पर वे चढ़ धाये।
बजा दुन्दुभी रणभेरी के, तुमुल घोष से रणक्षेत्र गुंजाये।।
अग्रसेन सुत विभु ने ही तब, आ रण में उनको ललकारा।
तनिक समय में ही सब हारे, विभु ने सबका दर्प उतारा।।

क्षत्रिय राजा क्रुद्ध थे, बलि पर सुन कर रोक।
रण में आ कर डट गये, कटक धार खम ठोक।।
किन्तु नहीं वे सह सके, विभु के प्रबल प्रहार।
टिके न रण में एक भी, गये शीघ्र ही हार।।
हारे राजा लाज से, उठा न पाते भाल।
झुके नयन ले मौन सब, हो हतभाग निढाल।।
बन्धन में आबद्ध कर, ले कर सब को संग।

चले अग्रसुत राज्य को, रिपु मद कर के भंग।।
बन्दी बना सभी भूपों को, ले कर महाराज ढिग आये।
राजसभा में निर्णय सुनने, सभी खड़े आ शीष झुकाये।।
महाराजा तो बड़े दयालु, निज रिपु से भी बैर न पाले।
वे तो सहज स्नेह की मूरत, द्वेष घृणा को हर पल टाले।।
राज्योचित सम्मान दिया अरु, सबको आसन दे बैठाया।
बोले कैसा अहित हुआ जो, मुझसे बैर हृदय में लाया।।
आप सभी सम्मानित राजा, जन पालन दायित्व आपका।
उसे त्याग कर बैर द्वेष युत, क्यों अपनाया पंथ पाप का।।
पहले ही कितनी नर बलियां, युद्ध महाभारत ने ले ली।
इस भारत माता ने कितनी, मौतें निज लालों की झेली।।
कितना रक्त बहा धरती पर, कुरुक्षेत्र अब भी रंजित है।
उस पीड़ा उस दुःख की कलिख, से कण कण अब भी अंजित है।।
फिर भी आप नहीं उकताये, आपस में लड़ने भिड़ने से।
हे राजन क्या मिल जाता है, आपस में लड़ लड़ मरने से।।
बन्धु व्यर्थ क्यों अपनी ताकत, इक दूजे पर तोल रहे हैं।
क्या न इस तरह सर्वनाश का, अपने हम पथ खोल रहे हैं।।
मैं न युद्ध का कभी पक्षधर, सदा मित्रता चाहूं सब से।
अतः निवेदन बैर छोड़ दो, करो मित्रता सब से अब से।।
युद्ध लड़ाई मारकाट सब, ये तो हैं विनाश के द्वार सभी।
ये निश्चित कारण अवनति के, इनसे न हो उद्धार कभी।।
ये हिंसा खुद ही अपनो की, अपना ही नाश कराती है।
अपना अपनो का राज्य राष्ट्र का, सत्यानाश कराती है।।
मित्रों सीख तनिक तो ले लो, हुए हाल के महा विनाश से।
अब तो मुक्त करो हे मित्रो, निज मन को इस कालपाश से।।
मिलो मिला कर हृदय थाम लो, हाथ चलो प्रगति के पथ पर।
शान्ति अहिंसा और मित्रता, विजय दिलाते सदा लक्ष्य पर।।
हे राजन मम यही निवेदन, अगर आपको तनिक सुहाए।
तो स्वीकार मित्रता मेरी करिये, यदि सबके मन भाये।।
जो कुछ हुआ भुलाया मैंने, वैर आप भी मन से त्यागें।
हृदय हृदय से मिला बांध लें, आपस में हम स्नेहिल धागे।।
कृणवन्तो विश्वं आर्यम् यदि, ध्येय हमें सत्य करना है।

तो मित्रों इस द्वेष मार्ग पर, हमें न कभी डग भी धरना है।।
यह सपना अपने पुरखों का, सत्य हमें मिल कर करना है।
बैर भाव प्रतिस्पर्धा त्यागें, स्नेह सभी के उर भरना है।।
क्षत्रिय का तो धर्म सदा ही, संरक्षण देना जन जन को।
नहीं तनिक भी उचित कदापि, उत्पीड़न करना जन मन को।।[1]
मेरा मित्रों यही निवेदन, सभी शान्ति का पथ अपनाएं।
तभी हमारी होगी उन्नति, लक्ष्य सभी अपना पा पाएं।।
मैंने अपनी बात कही है , राष्ट्रधर्म की बात ध्यान धर।
उचित लगे और मन को भावे, इसे परखना आप मान कर।।
अब सब अपने राज्य पधारो, मुझको समझ हितेषी अपना।
मिल कर ऐसा करें आप कुछ, जन हित का सच होवे सपना।।
समुचित दे सम्मान विदा, दी प्रेम स्नेह से गले लगा कर।
क्षमा मांग तब राजाओं ने जोड़े कर, सब बैर भुला कर ।।

हिंसक राजा हार कर, क्षमा मांगते आप।
अग्रसेन के उर सदा, करुणा रहती व्याप।।
क्षमादान देकर दिया, सबको ही सम्मान।
लौटे राजा देश निज, गलती अपनी मान।।

---

1. क्षत्रियों का धर्म आततायियों से रक्षा करना है, स्वयं आततायी होना क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध है।

- डॉ. स्वराज्यमणि अग्रवाल - सम्पूर्ण अग्रसेन उपाख्यान

तेरह

सौहार्द्र यात्रा

गये भूप सब लौट पर, प्रश्न छोड़ कर एक।
बैर द्वेष हिंसा जनित, जन मन में क्यों टेक।।
अग्रसेन उद्विग्न हो, मन में करे विचार।
जन मन से कैसे मिटे, कुत्सित कुटिल विचार।।

भूप गये सब लौट शान्ति से, अग्रसेन ने निज सोचा मन में।
यह विकराल बैर की ज्वाला, क्यों फैली इस राष्ट्र कानन में।।
यह अग्नि तो भस्म कर देगी, सकल राष्ट्र से मानवता को।
और मनों में जन जन के यह, ठूंस रख देगी दानवता को।।
इसका यही उपाय देश का, भ्रमण करूं मैं खुद ही जाकर।
जन जन के मन स्नेह जगाऊं, मन्त्र अहिंसा का बतला कर।।
देशाटन करने का व्रत यों, अग्रसेन ने मन ही मन ठाना।
राष्ट्र अस्मिता की रक्षा का, एक उपाय यही बस माना।।
निश्चय कर मन में यों उसने, निज पुत्रों को तुरत बुलाया।
सबको अपने पास बिठा कर, अपना निश्चय उन्हें सुनाया।।
फिर उनको ले संग आप ही, गर्ग गुरु के आश्रम आये।
उर की व्यथा कही ऋषिवर से, बोले गुरुवर मार्ग बतायें।।
देशाटन करने की इच्छा, व्यक्त गुरु के आगे कर दी।
हृदय खोल कर सकल योजना,भी गुरुवर के आगे धर दी।।
बोले ऋषिवर महासमर ने, जन जन में विष घोल दिया है।
हिंसा द्वेष बैर फैला कर, द्वार नरक का खोल दिया है।।
भूल गये नर मर्यादा को, नारी ने सत पन्थ भुलाया।
धर्म नीति को त्यागा सबने, कुटिलाई का पथ अपनाया।।
कृणवन्तो विश्वं आर्य यह, ध्येय मात्र बन घोष रह गया।
पशुता पनप रही पग पग पर, उर पापों का कोष रह गया।।
कितना मनुज गिर गया नीचे, मात्र स्वार्थ चिन्तन करता है।
परहित औ परमार्थ भाव को, तनिक नहीं मन चित धरता है।।
राजा नहीं प्रजा के रक्षक, बने लुटेरे भक्षक जन के।

दोनों हाथों लूट रहे हैं, सुख सुविधा साधन जन जन के।।
जनता हुई भ्रमित पग पग पर, दोष परस्पर लगा रही है।
अपनों की प्रगति किसी को, नहीं तनिक भी सुहा रही है।।
लड़ते हैं आपस में सारे, मारा मारी घोर मची है।
अपनापन खो गया कहां पर, मन में रिपुता रार रची है।।
हे गुरु हृदय प्रताड़ित मेरा, मैं इसका प्रतिकार करूंगा।
जन जन के ढिग जाकर गुरुवर, फिरसे उनमें प्यार भरूंगा।।
मुझको दें आशीष कार्य यह, जन हितकारी मैं कर कर पाऊं।
आज्ञा दें गुरुदेव ध्येय मैं, सिद्ध सफलता से कर पाऊं।।
ऋषिवर बोले धन्य पुत्र तुम, धन्य तुम्हारी करुण भावना।।
जग कल्याण हितार्थ तुम्हारी, धन्य धन्य अति धन्य धारणा।।
हे सुत निर्भय हो कर जाओ, साधो उत्तम लक्ष्य तुम्हारा।
सिद्ध मनोरथ हो कर आओ, यह शुभ आशीर्वाद हमारा।।
पुत्र तुम्हारे सभी समर्थ हैं, कुशल योग्य और नीतिवान हैं।
राज काज निर्विघ्न करेंगे, सब नीति धर्म का इन्हें ज्ञान है।।
हो निश्चिन्त निश्शंक हृदय से, गमन करो कल्याण वीथि पर।
यह अभियान विश्व हितकारी, पूर्ण करो चल वंश रीति पर।।1

हे सुत निर्णय आपका, हितकर है अति श्रेष्ठ।
निश्चित इससे विश्व का, होगा भला यथेष्ठ।।
घटनाक्रम जो घट गये, उनसे हैं भयभीत।
प्रेम शान्ति का लेप दो, बन कर सब का मीत।।
अभय लोक को चाहिये, इसका दो आभास।
जाओ मां का नाम ले, मेटो जन सन्त्रास।।

पाकर यों आशीष गुरु की, अग्रसेन चल पड़े भ्रमण पर।
पीड़ित जन की हरने पीड़ा, हिंसा पथ का अतिक्रमण कर।।
नगर नगर हर गांव गांव में, शंख जागरण का जा फूंका।
घर घर में जन जन को जा कर, दिया स्नेह सन्देश प्रभू का।।
सत्य सनातन धर्म हमारा, पुरखों की पावन सुकृति है।
सब प्राणी भाई भाई हैं, यही हमारी शुभ संस्कृति है।।
सच्चा मानव वही जगत में, जो इसका पालन करता है।

अपना मान सभी को जग में, जो सबका दारुण हरता है।।
यही मनुज का धर्म नित्य वह, जन जन का हित करता जाए।
सेवा ही सत्कर्म मान कर, पर हित से ना कभी अघाए।।
वर्षो तक सम्पूर्ण राष्ट्र में, घूम घूम कर पाठ पढ़ाया।
त्यागो आलस अकर्मण्यता, जन जन को झकझोर जगाया।।
अपनी संस्कृति पावन हितकर, जीवन में इसको अपनाओ।
रिपुता नहीं सखावत सीखो, सबको अपना मीत बनाओ।।
अग्रसेन का यह आह्वाहन, नर नारी सबके मन भाया।
अग्र संस्कृति का शुभ पावन, सन्देशा सब ने अपनाया।।
कार्य हुआ सम्पूर्ण राष्ट्र में, दर्शन पा कर देव रूप का।
शान्ति स्नेह समता पुनि व्यापी, सफल हुआ अभियान भूप का।।

देशाटन कर के दिये, धर्म नीति संस्कार।
अग्र संस्कृति का किया, घर घर घूम प्रचार।।
हिंसा तजने को कहा, दिया स्नेह सन्देश।
एक सूत्र में बन्ध गया, फिर से भारत देश।।

1. " अग्रसेन के राजपुरोहित गर्ग ऋषि ने उन्हें कहा " उठो! और तुम इस धरती पर शांति की स्थापना हेतु प्रयत्न करों। यह युग का संक्रमण काल है, तुम धर्मज्ञ हो अतः राष्ट्र में धर्म की संस्थापना हेतु चेतना का पूर्ण संदेश जन-मन में फैलाने हेतु तूम देश - देश में भ्रमण करो और अग्र संस्कृति का विस्तार करो।
- डॉ. स्वराज्यमणि अग्रवाल - सम्पूर्ण अग्रसेन उपाख्यान

निवृति

धर्म ध्वजा फिर से उड़ी, बढ़े स्नेह सम्बन्ध।
सकल राष्ट्रबन्धुत्व से, पुनः हुआ आबद्ध।।
मन से तब निश्चिन्त हो, लौटे अपने राज।
पीड़ा जन जन की मिटी, पूर्ण हो गया काज।।

लौटे अग्रसेन निज नगरी, जन मन में उल्लास छा गया।
घर घर सजे दीप तोरण से, दीपोत्सव आभास भा गया।।
फिर से शासन तन्त्र सम्हाला, पुत्र मान जनता को पाला।
वैश्य विश्व का पालन करता, सत्य सिद्ध इसको कर डाला।।
एक पत्नी वृत का प्रण पाला, जीवन भर निज धर्म निभाया।
सत्य अहिंसा नीति न्याय को, शासन में प्रति पल अपनाया।।
यज्ञों में हिंसा को रोका, सच्चा वैदिक मर्म बताया।
जीव मात्र सन्ताने प्रभु की, सत्य सनातन धर्म सिखाया।।
जन जन बन्धु सखा वत सारे, नहीं भेद है इनमें कोई।
एक सभी का सभी एक के, मूल मन्त्र माने हर कोई।।
समता का यह पाठ पढ़ा कर, ममता सबके उर में घोली।
बन समाजवादी सत् शासक, भर दी सबकी खाली झोली।।
अब पीड़ा का दंश मिट गया, सब दिशि शान्ति हर्ष सुख छाया।
तब महाराजा अग्रसेन के, उर सन्तोष चैन अति आया।।

महासमर के दंश का, भय था उर उर व्याप।
सुखद सुशासन से गया, छोड़ भयंकर छाप।।
प्रेम दया औ न्याय युत, किया युगों तक राज।
जन जन के मन बस गये, राम रूप महाराज।।

उम्र एक सौ आठ वर्ष तक, शासन किया पिता वत रह कर।
एक निष्क औ एक इष्टिका, वंश परम्परा को अपना कर।।
अब जीवन का सांध्य काल है, मैं सत्ता का साधन छोडूं।

माया मोह जीव के बन्धन, अब तो इनसे नाता तोडूं।।
ऐसा जागा भाव हृदय में, राज पाट सब त्यागा क्षण में।
संग लिया जीवन संगिनी को, तुरत चल दिये अभयारण में।।
परिजन जुटे सभी ने रोका, कहा जरूरत हमें आपकी।
किन्तु रुकें क्यों अब रोके से, लग्न लगी जब ईश जाप की।।
नहीं लोक में अब फंसना है, लगी लगन परलोक रमण में।
अब दो क्षमा मुझे सब परिजन, जाना मुझको देव शरण में।।
ज्येष्ट पुत्र को शासन सौंपा, शेष सभी गण नायक थापे।
कहा उन्हें सेवक बन रहना, रखना ध्यान दम्भ ना व्यापे।।
वैश्य धर्म है पालन करना, यही ध्येय रख शासन करना।
अग्र संस्कृति आदर्शो का, निज पर भी अनुशासन रखना।।
इतना कह ले विदा सभी से, पत्नी संग तज नगर सिधाये।
त्याग राजसी ठाट साधु बन, यमुना जी के तट पर आये।।
मार्गशीर्ष का पुण्य मास था, पावन तिथि थी पूरणमासी।
इसी दिवस आग्रेय तज दिया, अग्रसेन ने बन सन्यासी।।

राजकाज परिवार का, तज कर मन से मोह।
अग्रसेन जी चल दिये, लेने प्रभु की टोह।।
निर्जन वन में आ गये, जन जन से कर छोह।
यह तन बन्धन काम का, बन कर रहो विदेह।।

वन में रह वनवासी बन कर, प्रभु चरणों में हृदय रमाया।
परम् पिता हरि विष्णु के संग, मां लक्ष्मी का ध्यान लगाया।।
यह जीवन तो किया सदा ही, जन जन की सेवा में अर्पित।
अब उस जीवन को भी साधूं, मां को कर के सर्व समर्पित।।
यह जीवन की अन्तिम वेला, पल पल सांस सिमटती जाये।
यह अवसर परलोक साध लूं, कहीं हाथ से निकल न जाये।।
शैशव किया स्नेह का अर्जन, ज्ञान किशोरावस्था पाया।
युवा प्रौढ़ बन कर्म मार्ग को, अपना जीवन ध्येय बनाया।।
अब आया अवसान काल अब, जग से ऊपर उठ जाना है।
तन का कर के त्याग आत्म को, उस अनन्त में मिल जाना है।।

इसीलिये सब छोड़ छाड़ कर, वन में आश्रम आन बसाया।
सांसारिक वृतियां सब त्यागी, मां चरणों में ध्यान लगाया।।
यमुना तट पर घोर तपस्या, कर के मां का हृदय मनाया।
मा की कृपा हुई तन त्यागा, परम् लोक में आसन पाया।।
नील गगन में बन कर तारे, संग माधवी चमक रहे हैं।
अग्र जनों के उर में बन कर, ज्योति पुंज से दमक रहे हैं।।
यह गाथा पावन अति पावन, जो सुनते जन ध्यान लगा कर।
उन पर मां लक्ष्मी अनुकम्पा, करती धन के ढेर लगा कर।।
यह शुभ चरित् जैमिनि ऋषि से, जनमेजय ने सुना ध्यान से।[2]
दम्भ मिटा सद्मति तब पाई, उर उज्वल हो गया ज्ञान से।।
बन्द कर दिया नाग यज्ञ को, नागों का यों नाश थम गया।
यों अति क्रूर भयानक दूषित, वह कुत्सित अभियान थम गया।।

ऋषिवर जैमिनि कह गये, अंश रूप अवतार।
श्री विष्णु के अग्र थे, यही कथा का सार।।
अकुलाता है विश्व को, महा समर का ताप।
करुणाकर बन आ गए, हरने यह सन्ताप।।

इसीलिये ऋषि जैमिनि कहते, यह गाथा सब संकट नाशी।
क्यों कि अग्रसेन विष्णु के हैं, अंश अवतार अविनाशी।।
कहो सुनो सब प्रेम भाव से, जीवन अति सुख से बीतेगा।
जो इस पर रखता है श्रृद्धा, वह जीवन में नित जीतेगा।।
ज्यों जनमेजय के उर व्यापी, घोर व्यथा भी शान्त हुई थी।
मन का मिटा अमर्ष शुद्ध हो, गई बुद्धि जो भ्रान्त हुई थी।।[3]
सुन कर यह आख्यान अनोखा, उबर गया था वह पीड़ा से।
मिटी कुमति सद्मति मन व्यापी, मुक्त हुआ कुत्सित क्रीड़ा से।।
त्याग दिया पथ पाप कर्म का, चित्त धर्म में पुनः लगाया।
बैर द्वेष हिंसा को छोड़ा, पंथ अहिंसा का अपनाया।।
बोले नित नित नमस्कार है, ऐसे महापुरुष को मेरा।
धर्म अर्थ औ काम सभी का, जिनके कर्मो में नित डेरा।।
सुन कर यह आख्यान महात्मन, जीवन मेरा धन्य हो गया।

अनुगामी बन रहूं उन्हीं का, मन ऐसा कर्मण्य हो गया।।
परम् पुण्य यह पावन गाथा, नहीं सकल कह पाना सम्भव।
यह गाथा विस्तृत है इतनी, पूर्ण कह सकें निपट असम्भव।।
इसीलिये हे ऋषिवर इसको, बस मैं यहीं विराम देता हूं।
सुना आपने चित्त लगा कर, साधुवाद सबको देता हूं।।
हे सन्तों जो इसको सुनता, सुन कर जो जीवन में ढाले।
उसका हो कल्याण सर्व विधि, सकल सिद्धियों को वह पा ले।।
इतना कह कर सूत पुत्र श्री, उग्रश्रवा तो शान्त हो गये।
धन्य हुए सुन कर ऋषि शौनक, भ्रम सारे विश्रान्त हो गये।।
यह गंगा सी पुण्य प्रदा है, गौ माता सी है हितकारी।
सुन कर जो जीवन में ढाले, उसके लिये सदा हितकारी।।
मां की हुई कृपा जब मुझ पर, तब मैं वर्णन कर पाया हूं।
यह दुर्लभ आख्यान परम् है, जिसे सुलभ करवा पाया हूं।।
मां की कृपा रहे नित सब पर, यही प्रार्थना मैं करता हूं।
वार वार कर नमन मातु को, श्रान्त लेखनी को धरता हू।।
अग्रसेन महाराज की, कथा हुई सम्पूर्ण।
जिनका जन कल्याण में, जीवन बीता पूर्ण।।
हाथ जोड़ कर आप से, बस इतना अनुरोध।
जीवन में अपनाइये, इसे बिना अवरोध।।
मां लक्ष्मी की हो कृपा, सब पर राजी राम।
इसी भाव से कलम को, देता हूं विश्राम।।

---

1. श्री अग्र भागवत अध्याय पच्चीस
   मार्गशीर्ष्या सा राजा निर्ययो आग्रेयात् ततः।
   अभिवाद्यन्यवर्तन्त प्रजां तामनिवर्त्स वै तदा।। 71।।
2. श्री अग्र भागवत अध्याय प्रथम
   तदेवं सामर्ष शोचमाना क्रुद्धं परीक्षितं नृपम्।
   व्यासशिष्यो वेदवित प्रोवाच जैमिनी इदं वचः।। 10।।
   श्रुणुष्वैकमना महात्मन् इतिहासं परम पुण्यम्।
   कथितानि अग्रसेनस्य नान्त शक्यं हि कर्मणम्।। 20।।
3. श्री अग्र भागवत अध्याय सत्ताइस
   एवं स प्रणीतः मिथ्या व्यतिशंकितात्मा।
   चकार शान्ति परां नृधर्मदृष्टां जनमेजय।। 28।।

महाराजा श्री अग्रसेनजी की जन्म कुण्डली

महर्षि जैमिनी प्रणीत जैमिनी जय भारत ग्रन्थ के भविष्य पर्व के अन्तर्गत श्री अग्रउपाख्यानम्(श्री अग्रभागवत) में वर्णनानुसार महाराजा अग्रसेन जी की जन्म कुण्डली। यह कुण्डली पं. हेमन्त दवे, बालाजी ज्योतितष केन्द्र, स्टेशन रोड़, बाड़मेर द्वारा उक्त ग्रन्थ में दिये गये महाराज श्री अग्रसेन जी के जन्म ग्रह -नक्षत्रों के आधर पर बनाई गई है।

॥ जन्माङ्कम् ॥

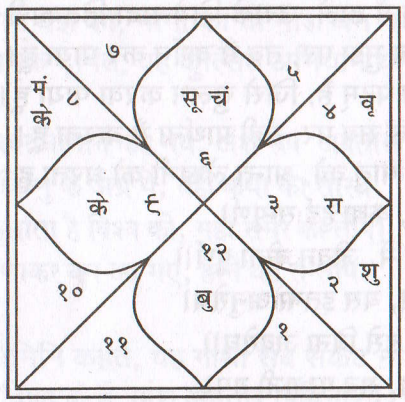

॥ जन्मद्रुम् ॥

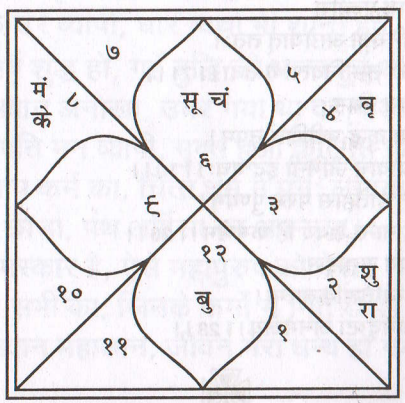

अपने इतिहास को जानने के लिए पढ़िए

अग्रवंशकर्तार का युग

(इतिहास शोध)

ओम प्रकाश गर्ग 'मधुप'

अग्रवालों के इतिहास की प्रामाणिक जानकारी

मूल्य 250 /-

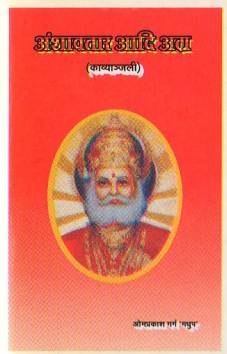

अंशावतार आदि अग्र

(काव्य)

ओम प्रकाश गर्ग 'मधुप'

अग्रवालों के आदि पुरुष विष्णु के अंशावतार महाराज श्री अग्र का काव्यमय जीवन चरित्र

मूल्य 100/-

गऊ जस कीरत

(राजस्थानी काव्य)

ओम प्रकाश गर्ग 'मधुप'

गौमाता के बारे में काव्यमय सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक जानकारी

मूल्य 100/-

:: पुस्तक प्राप्ति स्थल ::

बाबाजी पैकर्स
8/173 चौपासनी हाऊसिंग बोर्ड
जोधपुर (राज.)
मो. : 9414128908

बाबाजी स्क्रीन प्रिण्टर्स
हाईस्कूल रोड़, बाड़मेर (राज.)
मो.: 9461491868
9414438797

बंसल
ऐरण
कंसल
भंदल
तिंगल
मंगल
बिंदल
धारण
मधुकुल
तायल
नागल
कुच्छल
गोयल
गर्ग
गोयन
मित्तल
जिंदल
सिंघल